पाक्षिक
सारिका
अप्रैल: अंक-१
रेणु स्मृति अंक
१.५०

रेणु स्मृति अंक

सारिका

कहानियों और कथा जगत की जीवंत पाक्षिकी

वर्ष : १९; अंक : २४० १ से १५ अप्रैल, १९७९

आवरण :
पारदर्शी : दयाराम चावड़ा
रेखाचित्र : माली

संपादक :
कन्हैयालाल नंदन

उप-संपादक :
अवधनारायण मुद्गल, रमेश बत्तरा, सुरेश उनियाल

सज्जा : रवि शर्मा

संस्मरण खंड

11. रेणु : जेल से एक पत्र
12. लोकनायक का जवाब : रेणु के नाम
13. रेणु : सांस्कृतिक क्रांति के अग्रदूत : जयप्रकाश नारायण
14. खोयी हुई चीज : बी.पी. कोईराला और रेणु समकालीन हिंदी साहित्य के संत कवि थे! निर्मल वर्मा
15. रेणु के जन्म की कहानी : मां की जुबानी
16. मुझे अपनी सफाई देने की जरूरत नहीं पड़ती : पद्मा रेणु
17. मैं बोली—आप कहां चले गये ? : लतिका रेणु
18. हमारी कलम अब हथियार है : रवींद्र राजहंस
20. ऐसे थे रेणु चाचा : जयशंकर
22. काठ के तख्ते पर मस्ती की करवट : रामकृष्ण
25. रेणु : कुछ अनजानी-अजनबी बातें : कन्हैयालाल किंगर
26. चल, उधर गाड़ी की तरफ : रामधारी सिंह दिवाकर
29. सजनवा बैरी हो गये हमार : विजय अग्रवाल रजनीश
30. रेणु का घर : रेणु का गांव : अमरेंद्र मिश्र
31. खाली स्पूल-सा फ्लैट : गीता पुष्प शॉ

रचना खंड

35. गप्प का शीर्षक (कहानी)
38. रतनी (अधूरी कहानी)
40. संत कबीर (अधूरी कहानी)
43. जाहिद अली (अधूरी कहानी)
45. कविता
46. दो गीत
47. विद्या ददाति . . . और लोकगीतों की गोद में
48. डायरी के अधूरे पृष्ठ
51. सन् 1965, उतराई
53. दस्तावेज : 'मैला आंचल' के कारण मानहानि का मुकदमा और रेणु का एक पत्र.

साक्षात्कार खंड

56. रेणु के पात्रों का यथार्थ : अमरेंद्र मिश्र
59. 'मैडम मरीना उर्फ मरीना गेस्ट हाउस' और 'अगिनखोर के कथा-सत्र' : अवधनारायण मुद्गल
62. फ़िल्में और कृतियां
64. रेणु : बीमारी से मृत्यु तक की मार्मिक कहानी

धारावाहिक उपन्यास

66. ताकि सनद रहे (पांचवीं किस्त) : रामकुमार भ्रमर

अन्य आकर्षण

6. पाठकों का पन्ना
8. जरिया-नजरिया
71. अपना-अपना सुख (लघुकथा) : एस. मोहन 'शरन'
73. दो ग़ज़लें : विट्ठल भाई पटेल : सुनील मिश्र

पाठकों का पन्ना

असली जनता-रिझावन मंत्र

. . . कि भाई अशोक शुक्ल बड़ा गुनी. जादू जाने, मंतर जाने. उसने पहले तो किया अपने गुरु को सुमरन, फिर पढ़ा झुक-झुक कर तीन बार असली 'जनता-रिझावन' मंत्र और लिख डाला जमकर **'किस्सा किस्मत बदलाई के केस का.'** अब दया हो, दुआ हो तो असर में लगे वक्त, मंत्र का असर तो होता है उसी वक्त. कि अब भाई जिधर नजर डालो 'सारिका' और अशोक शुक्ल के अलावा कोई दूसरा नाम ही न सुनें.

अब यार, लिखवाओ और चार-छह इसी तरह के किस्से अशोक शुक्ल से और छापो दनादन हमारी 'सारिका' में, जिससे कुछ तो असर हो अजगरों में.

▣ हरीश वाजपेई, आगरा

इस शहर में : एक मार्मिक कहानी

सारिका को संवारने का प्रयास आप निरंतर कर रहे हैं, इसमें कोई संदेह नहीं. सारिका के फरवरी अंक-2 में प्रकाशित कहानी **'इस शहर में'** (आशीष सिन्हा) ने यह पत्र लिखने को मजबूर कर दिया. मुझे तो बहुत दिनों बाद इस तरह की मार्मिक कहानी पढ़ने को मिली है. पता नहीं क्यों **'बाहर और वापस'** में कामता नाथजी जम नहीं पाये हैं. आपने सारिका में गजल देने की परंपरा कायम रखी है तो कृपया स्तर पर भी ध्यान दें. **'संबंधों के टूटते तिलिस्म (2)'** में आपने जिस सवाल को उठाया है वह कोई नया नहीं है. महाकवि निराला, शिवपूजन सहाय, फणीश्वरनाथ रेणु जैसे दर्जनों साहित्य-साधकों का जीवन एक भारतीय साहित्यकार के जीवन को समझने के लिए काफी है. आपके नाम लिखा गया भाई सिन्हा का पत्र जनतंत्र की हामी भरने वाली इस जनता सरकार के लिए खुला दस्तावेज है. किंतु हम और आप सभी जानते हैं कि सत्ताधारी नेताओं की कुर्सियां बेशर्म हुआ करती हैं. चाहे सरकार किसी भी पार्टी की हो.

▣ दिनेश्वर प्र. सिंह 'दिनेश', जमशेदपुर

बेचैनी भरी साहसिकता

फरवरी अंक (2) में सिर्फ एक कहानी उल्लेखनीय लगी: **'ब्लैक आउट'** (बल्लभ सिद्धार्थ) इमर्जेंसी के साक्षात्कार की यह एक नये ढंग की कोशिश है जिसमें सत्ताधारियों की चारित्रिक मुद्राओं के उद्घाटन के साथ उस समय की आंतरिक-बाह्य स्थितियों का पुन मूल्यांकन है और उसे कहानी की रचनात्मकता के भीतर ढालने की बेचैनी भरी साहसिकता भी. अकेले बंद कमरे में अपने आप और दिमाग से लड़ता हुआ बुद्धिजीवी उस समय क्या महसूस कर रहा था, यह सब भी यहां खूब मिल जाता है.

▣ प्रकाश मनु, कुरुक्षेत्र

लड़ाई के एवज में

'संबंधों के टूटते तिलिस्म (2)' के अंतर्गत आपने एक पैना मुद्दा उठाया है. न जाने कितने आशीष सिन्हा, आज इसी तरह अपने वर्तमान जीवन को सामान्य जन हेतु लड़ने के एवज में प्राप्त उपेक्षित व्यवहार के फ्रेम में फिट करके जी रहे हैं.

▣ शैलेंद्र कुमार गुप्त 'शैली', फिरोजाबाद

निर्मल के रचना-संसार की सीमा

'सारिका' के 16 फरवरी 79 में **'पखवारे की पुस्तक'** स्तंभ के अंतर्गत निर्मल वर्मा की पुस्तक **'दूसरी दुनिया'** पर 16 दिसंबर 78 को हुई गोष्ठी में हुए विचार-विमर्श का सार-संक्षेप पढ़कर आश्चर्य हुआ. लगता है कि रिपोर्ट तैयार करने वाले महोदय ने सार-संक्षेप करने के नाम पर गोष्ठी में मेरे द्वारा कही गयी बातों को या तो समझा नहीं है या फिर जानबूझकर उन्होंने कुछ ऐसे वाक्यों को प्रसंग-च्युत करके रख दिया है जो मेरे व्यक्त विचारों से एकदम विपरीत अर्थ देते हैं. मैंने कहा था कि निर्मल जिस मानवीय स्वतंत्रता के हामी हैं. वह समाजवादी व्यवस्था और पूंजीवादी व्यवस्था के बुनियादी फर्क को समझकर नहीं चलती. इसीलिए जहां कहीं भी यह 'वर्गेतर स्वतंत्रता' अवरुद्ध होती है वे वहीं प्रतिरोध करते हैं, वे स्वतंत्रता को इसी अमूर्त अर्थ में ग्रहण करते हैं. यदि भारत में तानाशाही आती है, तो देर से ही सही वे इसका विरोध करते हैं. वियतनाम मुक्तियुद्ध की विजय पर भी वे हमारे साथ-साथ जुलूस में जाते हैं. इस तरह वे पूंजीवाद तथा समाजवाद दोनों के अंतर्गत 'स्वतंत्रता' के प्रश्न को एक अविशिष्ट प्रश्न की तरह देखते हैं. इसीलिए वे 'सतत जनवादी' होने के फेर में प्रायः 'अमूर्त मानववादी' और 'स्वतंत्रतावादी' बन जाते हैं. मानव अधिकारों और स्वतंत्रता की यह अमूर्त अवधारणा उनके रचना-संसार की सबसे बड़ी सीमा है. इसीलिए वे इसी अमूर्त दृष्टि के कारण अंततः कुंभ के मेले में शरण लेते हैं.

रिपोर्ट में मेरे नाम के आगे जो बातें लिखी गयी हैं वे न केवल मेरी वास्तविक टिप्पणी की महत्वपूर्ण बातों पर पर्दा डालती हैं बल्कि उल्टा असर पैदा करती है. मेरे अनेक मित्रों ने, जो वहां पर मौजूद थे उन्होंने भी, रिपोर्ट की इस 'ज्यादती' पर आपत्ति की, इसलिए भी मुझे लिखना पड़ा.

▣ सुधीश पचौरी, नयी दिल्ली

प्रकाश का वरदान . . . .

'सारिका' फरवरी अंक-2 मैंने पढ़ा. इसका कुछ अंश अत्यंत रुचिकर लगा. **'संबंधों के टूटते तिलिस्म'** में व्यक्ति-व्यक्ति की नसों में व्याप्त परंपरागत मियादी बुखार वस्तुतः चिंता का विषय है. **'बाहर और वापस'** कहानी में कामता नाथ ने म्युनिस्पैल्टी के स्वार्थपूर्ण तथा उत्तरदायित्वहीन कार्यों का सही सर्वेक्षण किया है और साथ ही रतनलाल की पत्नी के संदर्भ में नसों की अनुभवहीनता तथा बाबा विश्वनाथ के पवित्र मंदिर में भक्तों के पुनीत विश्वास के प्रति पुजारियों के श्रद्धाहीन व्यवहार का पर्दाफाश किया है. आशीष सिन्हा की कहानी **'इस शहर में'** संवेदना के द्वारा यह कहती है कि प्रकृति भी ऊंच-नीच का विभेद रखती है और आर्थिक रूप से निर्बल व्यक्तियों की पीढ़ी-दर-पीढ़ी सूर्यदेव की आराधना करती रहती है फिर भी उसे प्रकाश का वरदान नहीं मिलता. जिसके सहारे वह समाज की सीढ़ी पर चढ़ सके. **'ब्लैक आउट'** में बल्लभ सिद्धार्थ ने इमरजेंसी काल में शासन द्वारा समाज के साथ किये गये नग्न और घिनौने व्यवहार को सशक्त शब्द देकर, उसकी स्मृति को ताजा कर दिया है.

■ **सिद्धेश्वर प्रसाद सिंह, भभुआ (बिहार)**

प्रशंसनीय स्पष्टवादिता

फरवरी अंक-1 में श्री गोयनका के साथ श्री नरेश मेहता की लंबी बातचीत पढ़ने को मिली. निश्चित ही मेहताजी ने सारे प्रश्नों के उत्तर स्पष्ट शब्दों में दिये हैं. यथार्थ को स्वीकारा है, तथा बेहिचक अपनी बात कही है. उनकी स्पष्टवादिता अवश्य प्रशंसनीय है किंतु हिंदी के लिए कितनी गौरव की बात होती यदि, यह कवि शिरोमणि साक्षात्कार के समय अपनी बात केवल हिंदी में कह पाते.

प्रस्तुत साक्षात्कार में (दोनों) मेहता जी से कुल 76 प्रश्न पूछे गये हैं. इन 76 प्रश्नों के उत्तर में उन्होंने करीबन 145 अंग्रेजी शब्दों का खुलकर उपयोग किया है (इस संख्या में अंग्रेजी के उन शब्दों का समावेश नहीं है, जो हिंदी में घुल-मिलकर दैनिक भाषा का रूप ले चुके हैं)

■ **राधा पिल्लै, कामठी**

भीतर से बदलने की जरूरत

सारिका का फरवरी अंक-2 भलीभांति देखा. नरेश मेहता की कहानी **'आबार ऐशो'** व्यक्ति विशेष के अपने परिवेश, इंसान के भीतर और बाहर की विसंगतियों का निर्मम बेबाक चित्रण करने में सफल रही है. विशेष रूप से "स्त्री और क्या दे कि उसे भी मनुष्य समझा जा सके!" वाक्य ने बहुत कुछ सोचने पर विवश कर दिया.

एक नया नाम—उदय प्रकाश—पुरानों से कहीं बेहतर और आगे लगा जिसकी कहानी **'मौसाजी'** इंसान को भीतर से भी बदलने की जरूरत महसूस कराती है. साथ ही आशीष सिन्हा की **'इस शहर में'** कहानी में छोटी-सी बात को कहने के लिए जरूरत से ज्यादा समय लिया गया है. इससे कहानी में बोझिलता महसूस होती रही.

■ **विजयप्रकाश श्रीवास्तव, देवरिया (उ. प्र.)**

पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध

फरवरी अंक-2 पढ़ा. बड़ा ही रोचक रहा. नरेश मेहता की कहानी **'आबार ऐशो'** का पूर्वार्द्ध नीरस और कॉम्प्लीकेटेड लगा, परंतु उत्तरार्द्ध बड़ा ही रोचक रहा. कहानी पढ़कर लगा कि सचमुच वह स्त्री-पुरुष संबंधों के गहन पारखी हैं.

कामतानाथ की कहानी **'बाहर और वापस'** ने सबसे अधिक प्रभावित किया. अंग्रेजी जमाने की मध्यवर्गीय संस्कृति तथा कस्बाई व्यक्तियों के आपसी संबंधों की सुंदर झलक इस कहानी में प्राप्त होती है. बहुत दिनों बाद कामतानाथ की कहानी सारिका में पढ़ने को मिली.

'संबंधों के टूटते तिलिस्म (2)' में आशीष सिन्हा का पत्र पढ़कर बेहद दुःख हुआ. सचमुच भारतीय लेखक को कितने दुःख झेलने पड़ते हैं!

■ **राकेश भ्रमर, रायबरेली (उ. प्र.)**

मटका प्रसंग

सारिका के 'व्यंग्य-विशेषांक' (मार्च अंक-1) में मनोरंजन की ढेर सारी सामग्री देखने को मिली किंतु शरद जोशी का **'मटका प्रसंग'** सर्वाधिक जीवंत एवं रोचक लगा. **'मटका प्रसंग'** के माध्यम से व्यंग्यकार ने सरकारी कार्यालयों में फैले हुए भ्रष्टाचार एवं लालफीताशाही का सटीक चित्र प्रस्तुत किया है. शीर्ष से लेकर नीचे तक सब किसी न किसी रूप में या तो कदाचार का मार्ग अवलंबित करते हैं अथवा इसके लिए अनुकूल दशाएं तैयार करते हैं. शरद जोशी ने अपने इस लघु व्यंग्य आलेख **'मटका प्रसंग'** के द्वारा प्रमाणित ही कर दिया है कि, ईमानदारी के कोड़े खाकर कोई तड़पकर मरे, उसकी बजाय उसे भ्रष्टाचारी ही बन जाना चाहिए. भारतीय संस्कृति में जिस तरह "भ्रष्टाचार" का विष समन्वित हो रहा है, उससे तो यही परिलक्षित होता है कि हमारी संपूर्ण सामाजिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था का स्वरूप ही विकृत हो जायेगा.

■ **प्रो. कामेश्वर प्रसाद सिंह, रांची (बिहार")**

एक पत्र सरहद पार से

अहिंदी भाषी होते हुए भी हिंदी अच्छी तरह पढ़ सकता हूं. 'सारिका' एक नवीन रूप एक नवीन रेखा लेकर आती है. शायद इसी कारण 'सारिका' से मुझे विशेष लगाव रहता है. न जाने 'सारिका' के कितने अंक चबा चुका हूं. 'सारिका' की हरेक कहानी एक अमिट छाप अवश्य छोड़ जाती है.

कभी किसी कहानी में न जाने किस देश-प्रदेश की भाषाएं घुस आती हैं जिसे मैं कभी नहीं समझ सका. धिक्कार है मुझपर.

■ **बी. एम. पौडल, (नेपाल)**

गरीबी पर बहस

आशीष सिन्हा की **'इस शहर में'** को स्थान देने का धन्यवाद. यद्यपि डर लगता है कि कहीं यह समृद्ध वर्ग की उस कृपा की भांति तो नहीं है जो प्लेटफार्म पर किसी को लेने या भेजने जाने पर महज समय बिताने के लिए गरीबी पर बहस करते हैं.

■ **ब्रजेंद्र अग्निहोत्री, रायबरेली**

रचनाकार की विरासत

ज़रिया-नज़रिया

"अब सोचती हूं तो लगता है अब से तेंतीस वर्ष पहले मृत्यु के कगार पर खड़े एक मरीज को मैंने देखा था. उसकी सेवा की थी. यह नहीं कहती कि उसे जीवन दिया था. मैं ऐसा कहने वाली कौन होती हूं? तब से लेकर 11 अप्रैल, 1977 की साढ़े नौ बजे रात तक उसे अनवरत सेती रही और अंततः वह चला ही गया. मैं किससे कहूं कि इतने वर्षों की इस सेवा ने मुझे क्या दिया? जब तक जीवित हूं उनकी याद सेती रहूंगी—दो कमरों का यह फ्लैट, दीवारों पर लगी उनकी तस्वीरें, उनके दैनिक उपयोग के सामान, पुस्तकें-पत्रिकाएं... यही सब तो छोड़कर गये हैं वह. . . .पिछले पैंतीस वर्षों की भुलाये न भूलने वाली यादें!"

प्रो. रामबुझावन सिंह और डॉ. रामवचन राय द्वारा संपादित 'रेणुः संस्मरण और श्रद्धांजलि' में लतिका जी के ये शब्द कुछ हफ्तों पहले उनसे पटना में भेंट करने जाने से पूर्व मेरे मन में लगातार दस्तक दे रहे थे. लतिका जी अपने उस संस्मरण में अतिरिक्त रूप से भावुक हो गयी हों, ऐसा नहीं है. उनके शब्दों में एक सधा हुआ संयम है, जो उसी ग्रंथ के अन्य अनेक संस्मरणों में भी होता तो और अच्छा होता. मैंने उनसे मिलने पर प्रार्थना की कि वे और कुछ कहें, लेकिन उन्होंने एक समर्पिता के भाव से रेणु जी के नाम पर आंखों ही आंखों में नमन तो व्यक्त कर दिया, शब्द देने से प्रायः इनकार कर दिया था.

सचमुच अगर देखा जाये तो भौतिक रूप से लतिका जी की बात सच ही होनी चाहिए—"दो कमरों का फ्लैट, दीवारों पर लगी उनकी तस्वीरें, उनके दैनिक उपयोग के सामान, पुस्तकें-पत्रिकाएं. . . .यही सब छोड़कर तो गये हैं वह!" लेकिन एक रचनाकार के नाते रेणु जो कुछ छोड़कर गये हैं वह अन्याय के विरुद्ध लड़ने की संघर्षों से जूझते जाने की अदम्य जिजीविषा की अनवरत यात्रा है. रेणु ने हिंदी साहित्य में गांव की तस्वीर अपनी पूरी समग्रता से खड़ी की, आदर्शों की आंधी में बहकर उसका अधूरा चित्र नहीं दिया. सुधी पाठकों को याद होगा कि जब 'मैला आंचल' छपा था तब कुछ लोगों ने यह आरोप लगाया था कि यह उपन्यास श्री सतीनाथ भादुड़ी के 'ढोंढाई चरित मानस' की नकल है. मुजफ्फरपुर के श्री रमण ने उन्हें लिखा था, "डॉ. च. मा. की बहुत सारी चीजें उसमें आ गयी हैं. पीरगंज का मेरीगंज, टोलियां, पंचायत, टीन, टेम, कलस्टर आदि. . . . गरज अवयव प्रायः वही हैं कथानक का पैटर्न भी वही. ट्रीटमेंट अलग. प्रेरणा ग्रहण की स्वीकृति के बाद कुछ विशेष कहने को नहीं रह जाता. छोटा-सा एक साधारण 'सजेशन'. अपने में अहं का जन्म न होने दो. यह घातक होगा. अभी नौजवान हो. अपनी नयी रचनाओं से चकाचौंध पैदा कर देने की उम्र रखते हो."

श्री रमण ने ही अपने एक और पत्र में उन्हें लिखा था, "मैला आंचल के संबंध में बहुत सारी बातें कही जाती हैं. किसी रचना से प्रेरणा ग्रहण करना अपराध नहीं है, उसे अस्वीकार करते या टालने की प्रेरणा अशुभ है."

इसके जवाब में श्री रमण को रेणु ने लिखा था'आप मेरे अग्रजों में हैं, आप मुझे हर तरह की गालियां दे सकते हैं. अधिकार है आपको, किंतु चोरी का इल्जाम?

"चार्जशीट भेजिए कृपाकर. मैं अपनी सफाई देने की चेष्टा करूंगा. आप संतुष्ट न हों, साहित्य-संसार के चौराहे पर खड़ा कर कोड़े लगाइए बाद में....

"मैला आंचल के संबंध में बहुत सारी बातें कही जाती है, सुनी जाती हैं, सुनायी जाती हैं, फैलायी जाती हैं, किंतु कुछ लिखकर क्यों नहीं दी जातीं—मुझे इस बात पर आश्चर्य हो रहा है. इस तरह अंधेरे में किसको जवाब दिया जाये और किस बात का जवाब दिया जाये? आप शायद नहीं जानते कि मैं बहुत छोटी उम्र से श्री सतीनाथ भादुड़ी जी के साथ हूं. वे मेरे साहित्यिक गुरु हैं. जो कुछ भी हूं, उन्हीं का बनाया हुआ. बिगड़ा हूं दूसरों के कूचे में. . . . .मैं जरा भी नहीं घबड़ा रहा हूं. भीम है मेरे अंदर."

यह सारा पत्र व्यवहार मेरे सामने है और वह पत्र भी जिसके जरिये श्री सतीनाथ भादुड़ी ने स्वयं स्पष्ट किया कि "मेरा उपन्यास 1905-1945 के बीच की एक अपेक्षाकृत पिछड़े संप्रदाय की सामाजिक, राजनीतिक चेतना को व्यक्त करता है जबकि 'मैला आंचल' उन घटनाओं पर दृष्टिपात करता है जो खासतौर पर

1945 के बाद में घटित हुई. दोनों का घटनाक्रम अलग है. 'मैला आंचल' एक मौलिक कृति है और उसके लेखक पर ऐसे आरोप लगाना अन्याय होगा."

इसके अतिरिक्त उस प्रसंग की भी जानकारी हमें दी गयी कि कैसे किसी व्यक्ति ने लड़की बनकर गौरा के नाम से विभिन्न लोगों को पत्र लिखे और सम्मतियां मंगायीं. मैला आंचल के तत्कालीन प्रकाशक श्री ओंप्रकाश आज भी उस सारे प्रसंग को अंतरंगों के बीच चटखारे लेकर सुना देते हैं. यह सब अगर सहज संघर्ष की धारा का एक अंग मान लिया जाये, तब भी इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि रेणु को हिंदी में अपनी पहचान बनाने के लिए काफी पापड़ बेलने पड़े हैं. रेणु के शब्दों में, "मैं मानता हूं—यह अपराध मुझसे हुआ है, मैंने एक 'अजाना अचिन्हा' होकर साहित्य संसार में प्रवेश करने की धृष्टता की है. इसलिए लोग मुझे 'बैकडोर' से आया हुआ आदमी समझते हैं."

यह है रेणु की हिंदी साहित्य में 'एंट्री' की तस्वीर. और तब से लेकर आज तक वे मुझे संघर्षों के प्रतीक के रूप में ही दिखे. राजनीति में, स्वास्थ्य में, साहित्य में, फिल्मों में, वैयक्तिक जीवन में, हर मोर्चे पर वे लड़े, लड़ते रहे. यह लड़ाई ही एक सचेत रचनाकार की विरासत होती है और यही वह विरासत में छोड़ जाता है.

इसी विरासत को जीने के लिए उसे जरूरत पड़ने पर सशस्त्र लड़ाई भी लड़नी होती है, पद्मश्री भी लौटानी होती है और पेंशन भी. यहां तक कि जीवन का मोह छोड़कर अस्पताल से बाहर सड़कों पर क्रांति का परचम लहराने भी आना पड़ता है. लेकिन हमारे समाज की मानसिकता कुछ ऐसी है कि रचनाकार को अपने अंतिम क्षणों में भी अस्पताल में एक्सरे के लिए भइया-दादा से काम निकालना पड़ता है. हमने अपने साहित्यकारों का सम्मान करना सीखा कहां! हम उनसे उम्मीद करते हैं कि वे हमें चिंतक के नाते भविष्य दृष्टि दें, संघर्षों से जूझने की शक्ति दें और हम उन्हें चिंतन के लिए समय तक मुहय्या करने को तैयार नहीं!

जब मैं रचनाकार के लिए समाज से सम्मान प्राप्त होने की बात करता हूं तो इसका यह अर्थ नहीं कि उसे विशिष्ट बनाकर अपनी सामान्य सामाजिक जीवनधारा से काट कर वी. आई. पी. बना देने की वकालत करने बैठा हूं. मेरा मंतव्य इतना है कि जब एक रचनाकार से हम समाज की अन्य इकाइयों से अलग एक विशिष्ट चेतना और संवेदना की अपेक्षा करते हैं तो उसकी उस चेतना और संवेदना की रक्षा करना भी हमारा धर्म होता है. उसके लिए हमें अपने आपको, अपने सामाजिक परिवेश को तैयार करना पड़ेगा. तब शायद 'रेणु' के अस्पताल में पहुंचने पर अस्पताल में बीड़ी फूंकता हुआ कर्मचारी अपनी बीड़ी से अधिक कीमत रेणु के फुंकते हुए प्राणों की आंकेगा, तब शायद 'रेणु' को बेहोशी की दवा देने के लिए वह डॉक्टर आये, जो देश के किसी भी बड़े राजनेता के लिए आता है.

इलाज के क्षेत्र में ही नहीं, दैनंदिन जीवन के अनेक पहलुओं पर साहित्यकार अपमानित हो रहे हैं और समाज के प्रति अपने दायित्व को निभाते हुए भी अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहे हैं और हमारी सामाजिक चेतना इस दिशा में चुपचाप ऊंघ रही है. राजनीतिक क्षेत्र की बात और भी पीड़ादायक है. किसी साहित्यकार की पीड़ा को वे एहसान की तरह सुनते हैं. अभी बहुत दिन नहीं हुए, कानपुर आई. आई. टी. के रजिस्ट्रार और प्रसिद्ध कथाकार श्री गिरिराज किशोर को उनके पद से, बिना कारण बताये निलंबित कर दिया गया. अपराध शायद यह था कि वे आई. आई. टी. जैसे अंग्रेजियत के नशे में डूबे शिक्षा संस्थानों से भारतीय रचनाकारों, साहित्यकारों को वहां के सांस्कृतिक माहौल में यदा-कदा लाने की चेष्टा करके वहां की अंग्रेजियत को खलल पहुंचाने की कोशिश में लगे हुए थे. इसकी खबर पाकर दिल्ली के कुछ सम्मानित साहित्यकारों ने शिक्षा मंत्री के नाम एक ज्ञापन तैयार किया (जो बाद में पत्रों में प्रकाशित भी हुआ) कि एक रचनाकार को इस तरह बिना किसी स्पष्ट कारण और जांच के अपमानित और दंडित न किया जाये. यह ज्ञापन देने के लिए हिंदी के एक वरिष्ठ अग्रज साहित्यकार के साथ मैं भी गया था. शिक्षा मंत्री जी ने इस पर जो सलाह हम लोगों को दी वह काबिलेगौर है. उन्होंने कहा कि 'आप लोगों को इस बीच में नहीं पड़ना चाहिए. यह रचनाकारों का काम नहीं है.' उनके इस मशविरे और मंतव्य को सुनकर हमारे हतप्रभ होते-होते हमारे अग्रज साहित्यकार ने प्रतिवाद किया था, "एक रचनाकार के नाते तो और भी हमारा कर्तव्य सघन हो जाता है कि हम अनियमितताओं और कुव्यवस्थाओं के प्रति आपका ध्यान आकृष्ट करें." लेकिन राजनीति को जो मशविरा देना था, दे दिया. उपन्यासकार अपमानित हो या कवि या चित्रकार, उसे क्या!

और यह अकेली मिसाल नहीं है जहां साहित्यकार को राजनीति अथवा नौकरशाही अपमानित और लांछित कर रही है. उत्तर प्रदेश के हिंदी संस्थान से श्री ठाकुरप्रसाद सिंह के अपदस्थ होने की घटना अभी बहुत पुरानी नहीं हुई...और यह क्रम जारी नहीं रहेगा, इसके कोई आसार अभी नहीं दिख रहे. इसीलिए रेणु की संघर्ष चेतना के प्रति गहन आस्था के साथ हम नतसिर हैं और उनकी दूसरी पुण्य तिथि पर उनके स्मरण में 'सारिका' का यह अंक उस संघर्ष चेतना के शलाकापुरुष की याद में समर्पित कर रहे हैं.

रेणु स्मृति

संस्मरण खंड

'याद बहुत आयेंगे दृश्य इस सफर के'.... सच, रेणुजी के यातना, संत्रास और संघर्ष से भरे लंबे सफर के दृश्य भुलाये नहीं जा सकते. यादें अतीत की चीजें हैं लेकिन जब वे वर्तमान के बीच से गुजरती हैं तो उनके संदर्भ नये अर्थ ले लेते हैं, उनकी गति में थरथरा देने की ताकत भर जाती है और उनका प्रभाव क्षेत्र विशाल और व्यापक हो जाता है. किसी भी आदमी का बड़प्पन उसके कार्यों से तो आंका ही जाता है, उसे याद करने वालों की संख्या और उनके लहजे से भी आंका जाता है. रेणुजी की यादों के दरवाजे पर दस्तकें देने के लिए एक विशाल समूह खड़ा है. यहां हम प्रस्तुत कर रहे हैं ...उसी समूह की दस्तकों की अनुगूंज!

आंदोलन के दौरान : हम जुलूस लेकर आगे बढ़ेंगे... आप लाठी चलायें या गोली !

जेल से—
रेणु का एक खत, लोकनायक के नाम

पूर्णियां मंडल कारा
12. 8. 74

श्रीचरणेषु,

जयप्रकाशजी,

मैं पिछली 7 जुलाई से गांव में था और आंदोलन के पहले चरण की तैयारी कर रहा था. एक अगस्त को सामूहिक उपवास के बाद शाम को फारबिसगंज जन-संघर्ष समिति के अध्यक्ष श्री दयानंद साहू की अध्यक्षता में सभा हुई, जिसके माध्यम से आंदोलन के संदेश और संकल्प को दुहराया गया. इसी बीच सारे इलाके में अभूतपूर्व बाढ़ आ गयी. इस प्राकृतिक प्रकोप से पीड़ितों को राहत दिलाने के उद्देश्य से, लायंस क्लब, फारबिसगंज के सहयोग से करीब पचीस हजार रुपये इकट्ठे किये गये. यह योजना बनी कि छात्र एवं जन संघर्ष समिति के सदस्य संघर्ष के साथ-साथ राहत का भी कार्य करें. इस सिलसिले में मैं स्वयं छात्रों की एक टोली के साथ नरपतगंज, फारबिसगंज के संकटग्रस्त क्षेत्र को देख आया, और किस प्रकार राहत का कार्य किया जाये, इस संबंध में आपस में बैठकर फैसला किया. छात्र और जन संघर्ष समिति ने 'बाढ़ पीड़ित सहायता टोली' बनाकर राहत कार्य शुरू कर दिया. इसने जोगबनी, कुसुमाहा, भमहारा, रमई आदि क्षेत्रों में पुराने तथा नये कपड़े, घाव की दवाइयां, चूड़ा, चना, किरासन तेल, दियासलाई की डिब्बियां आदि सामग्रियों का वितरण किया और कराया. जेल में जैसी सूचना मिली है,

उसके अनुसार राहत का कार्य चल रहा है. किंतु अधिकारी तथा पुलिस वाले हमारे छात्र स्वयंसेवकों के पीछे पड़े हुए हैं, जिसके कारण राहत कार्य में भी बाधा पड़ रही है.

आंदोलन के कार्यक्रम के अनुसार हमने एक विशाल जुलूस, जिसमें करीब दो-ढाई हजार प्रदर्शनकारी सम्मिलित हुए, निकाला. हम जुलूस लेकर प्रखंड कार्यालय की तरफ जा रहे थे, सीताघाट पुल (रानीगंज रोड) पर स्थानीय पुलिस दारोगा और इंस्पेक्टर सी. आर. पी, बी. एस. एफ. की टुकड़ी के साथ-साथ इस तरह खड़े थे मानो हम पुल को तोड़ने या उड़ाने जा रहे हों. पुल के पास पहुंचते ही जुलूस की अगली पंक्ति पर लाठी से प्रहार हुआ और रिक्शा गाड़ियों को इस तरह धकेल दिया गया कि रिक्शा पुल के नीचे अथाह जल में गिरते-गिरते किसी प्रकार बच सका. रिक्शा-चालक जहरी यादव और लाउडस्पीकर से नारा लगाने वाले साथी रामाशंकर गुप्त को लाठी से चोट लगी. हमने आगे बढ़कर पुलिस वालों को रोका और कहा, "आप यह क्या कर रहे हैं? लाठी चार्ज क्यों करवा रहे हैं?"

दारोगा ने मुझसे कहा, "जुलूस यहां से आगे नहीं बढ़ेगा!"

"क्यों? आप हमें बी. डी. ओ. से मिलने नहीं देंगे? आप नहीं देख रहे हैं कि जुलूस में दर्जनों बच्चे हैं, बूढ़ियां हैं. इनसे आपको क्या खतरा है? ये सभी बाढ़-पीड़ित हैं और इन्हें बी. डी. ओ. से फरियाद करनी है."

पुलिस दारोगा ने कहा, "आपको नहीं मालूम है कि धारा 144 लागू है?"

"मालूम है. और आपको नहीं मालूम है कि सारा इलाका बाढ़ से पीड़ित है? हम तो जुलूस लेकर आगे बढ़ेंगे, आप लाठी चलायें या गोली!"

इसके बाद हम आगे बढ़े. करीब 30-40 मिनट तक गुत्थम-गुत्थी और घेर-धार होती रही. अंततः वे हमें रोकने में असमर्थ रहे.

हम जब ब्लॉक-ऑफिस पहुंचे तो वहां पहले से ही मुख्य द्वार पर सी. आर. पी. और बी. एस. एफ. के जवान तैनात थे. फिर वही रस्साकसी शुरू हुई. अंततः मैं अन्य 6 साथियों (सर्वश्री लालचंद साहनी, सत्यनारायण लाल दास, शिव कुमार नेता, जयनंदन ठाकुर, रत्नेश्वर-लाल दास एवं रामदेव सिंह) के साथ अंदर बी. डी. ओ. के दफ्तर में पहुंचा. हमारे साथियों ने कार्यालय में जनता का ताला लटकाया और हमने बी. डी. ओ. से कहा कि बाढ़ से सारा इलाका तबाह है और आप सिर्फ 'ला एंड आर्डर' में 'मेंटेन' कर रहे हैं?

हमने अपनी मांगें उनके सामने रखीं तो वे बोले कि आप लोग मिलकर खाली कांग्रेस को बदनाम करने का काम कर रहे हैं. आप जान लें कि मंहगाई और भ्रष्टाचार को कोई भी पार्टी और कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो, नहीं मिटा सकता. हमने उनसे बात करना फिजूल समझा. हमने एलान किया कि हम आपका कोई भी काम नहीं चलने देंगे और हम अपने साथियों सहित धरने पर बैठ गये. पुलिस दारोगा ने आगे बढ़कर कहा, "हमने आप लोगों को गिरफ्तार किया."

हम गिरफ्तार हो गये, किंतु बाहर प्रदर्शनकारी मुख्य द्वार को घेरकर खड़े रहे जिसमें सात-सात साल की बच्चियां और सत्तर साल की बूढ़ी महिला भी थी. प्रदर्शनकारी नारे लगा रहे थे—हमारे नेताओं को रिहा करो या हमें भी गिरफ्तार करो!

पुलिस ने उन्हें खदेड़ने की चेष्टा की किंतु वे अडिग रहे. अंततः पुलिस ने 205 प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार किया जिसमें सत्ताइस औरतें (कुछ गोद में बच्चे लेकर) थीं.

एक ट्रक, एक बस और एक जीप में हमें भरकर फारबिसगंज थाना में ले गये, जहां संघर्ष-समिति की ओर से जलपान की व्यवस्था थी. मेरे कहने के बाद पुलिस वालों ने छात्रों को खिलाने की अनुमति दी. वहां से हमें सीधे अररिया भेजा गया. हमें दिन में करीब ढाई बजे गिरफ्तार किया गया था.

अररिया हम करीब 9 बजे रात को पहुंचे. वहां अररिया जेल के जेलर ने हमें लेने से इंकार किया क्योंकि उनके पास इतनी जगह नहीं थी. हमें पूरी रात खुले में, पुलिस क्लब के भीगे मैदान में, घेरकर रखा गया. पुलिस के द्वारा हमारे खाने-पीने की कोई व्यवस्था नहीं थी... और वे हमें सी. आर. पी., बी. एस. एफ. के घेरे में छोड़कर न जाने कहां चले गये.

हमारे साथियों ने फैसला किया कि हम एस. डी. ओ के घर पहुंचकर उनका घेराव करें. रात के करीब डेढ़ बज रहे थे. हम नारे लगाकर आगे बढ़े. सी.आर.पी., बी. एस. एफ., पुलिस दारोगा के जत्थे ने हमें फिर घेरा. हमने भोजन तथा पानी की मांग की. मगर उन्होंने एक बूंद पानी भी हमें नहीं दिया.

उन्होंने हमारे बच्चों को पानी पिलाया. हमने अपने कान से बिहार पुलिस के जवानों को आपस में बातें करते सुना—ये तो जुल्म है. हमें तीन सौ, ढाई सौ महीना देंगे ये, और चावल तीन रुपये किलो है. ये लड़के ठीक ही तो कह रहे हैं. अफसर लोग चलावें इन पर लाठी. हमसे तो अब यह पाप नहीं होगा!

तीन बजे रात में अररिया के एस.डी.ओ., एस. पी. दल-बल सहित पहुंचे और आते ही 18 व्यक्तियों की (टार्च की रोशनी से चेहरे देखकर) गिनती की. बाकी लोगों को जबर्दस्ती पकड़-पकड़कर बस में धकेलना और लादना शुरू किया. उनके विरोध करने पर उन्हें गालियां दी गयीं और तुरंत बस को न जाने कहां खाली कर दिया. पूछने पर बोले कि उन्हें फारबिसगंज भेज दिया गया.

इसके बाद फिर वे अधिकारीगण न जाने कहां गायब हो गये. हम रात भर वहीं बैठे रहे.

सुबह हमने नारे लगाने शुरू किये तो एक पुलिस दारोगा आकर बोला कि आप लोगों को तुरंत पूर्णिया भेजा जा रहा है. हमने जब खाने-पीने की बात की तो वे बोले—व्यवस्था हो रही है.

लेकिन 11 बजे तक वे फिर गायब रहे. 1 बजे वे हमारा वारंट तैयार करा कर आये और हमें चलने को कहा. हमने एतराज किया—हमें मजिस्ट्रेट के सामने हाजिर किये बिना वारंट पर दस्तखत कैसे और क्यों करवाया गया? हमें मजिस्ट्रेट के सामने हाजिर होने दें.

उन्होंने कुछ भी नहीं सुना और हमें

पकड़-पकड़कर खुले ट्रक में चढ़ाया गया. हम 4 बजे (10 तारीख को) पूर्णियां जेल पहुंचे.

हमारे साथियों पर चार-चार वारंट और दस-दस दफायें लगायी गयी हैं. हमारे प्रचार करने वालों को पीटा गया है. लाउडस्पीकर छीना गया है. रिक्शा जब्त किया गया है. रिक्शा-चालक को गिरफ्तार किया गया है.

उस दिन (10 तारीख को) फारबिसगंज बाजार पूरी तरह बंद रहा. नरपतगंज प्रखंड ऑफिस में तालाबंदी हुई. फारबिसगंज में मोहन यादव और अशोक दास (दोनों छात्र) को गिरफ्तार किया गया. इसके बावजूद हमारे बहादुर साथियों ने फैसला लिया है कि वे 13 तारीख को, फारबिसगंज के 8 चौकों पर कम से कम 10 व्यक्ति, 12 घंटे के अनशन पर—पुलिस जुल्म के खिलाफ—बैठेंगे. 15 तारीख को काला दिवस मनाने का फैसला किया गया है. इसी के साथ-साथ अगले चरण के कार्यक्रम के अनुसार छात्र एवं जन-संघर्ष समिति के लोग आंदोलन के घोषित कार्यक्रम के अनुसार भी काम करेंगे.

मेरा स्वास्थ्य ठीक ही है. यों, पिछले एक सप्ताह से मेरा पेप्टिक के दर्द का दौरा शुरू हुआ है, फिर भी मानसिक रूप से पूर्ण स्वस्थ हूं.

जेल की बात? कुछ दिन पहले... ने मुझसे कहा था कि गुलाम भारत के जेल और स्वतंत्र भारत की जेल में काफी अंतर है! सचमुच, पूर्णियां जेल मौजूदा भारत का असली नमूना है, जिसमें आदमी भी जानवर बन जाये. एक हजार एक सौ बारह कैदियों में शायद एक भी व्यक्ति स्वस्थ नहीं है.. शायद नर्क ऐसा ही होगा.. 1942 और 1974 में इतना अंतर?

प्रणाम स्वीकार करें.

भाई ही,
रेणु

रेणु : छिटपुट प्रसंग

मेरे पास के लोग

फारबिसगंज नगरपालिका में नगर की ओर से अपने प्रिय, क्षेत्रीय और ख्याति प्राप्त साहित्यकार रेणुजी के स्वागतार्थ एक आयोजन किया गया था. मुख्य अतिथि श्री रेणु के अतिरिक्त जाने-माने साहित्यकार उपस्थित थे. वक्ताओं ने रेणु-साहित्य पर बोलने के बाद उनके व्यक्तिगत संघर्षशील जीवन पर भी अपने विचार प्रकट किये. अंत में रेणु की बारी थी. उन्होंने अपना वक्तव्य इस प्रकार दिया:

"अक्सर लोग मेरे लेखक होने के चलते मुझे वक्ता भी मान लेते हैं लेकिन मैं बोलता बहुत कम हूं. चिंतन ज्यादा करता हूं और लिखता हूं. मैं नहीं समझता कि साहित्यकार के लिए बोलना भी जरूरी होता है..." अपने वक्तव्य के अंत में उन्होंने उन वक्ताओं पर तीखा कटाक्ष किया जिन्होंने उन्हें जन-सामान्य से काटकर आकाश पर बिठा दिया था. कटाक्ष कुछ इस प्रकार के थे:

"कुछ लोगों ने इस मंच से ऐसा कहा कि मेरे गर्दिश के दिनों में जो मुझे पूछते तक नहीं थे, अब वे ही मेरे पीछे लगे रहते हैं. लेकिन ऐसा कहना ग़लत है. मैं हमेशा उन्हीं से जुड़ा रहा जिनसे आज भी जुड़ा हूं. फारबिसगंज स्टेशन पर उतरकर मैं उसी रिक्शा वाले को तलाशता हूं, जिसे वर्षों पूर्व तलाशता था. मेरी कहानियों और उपन्यासों के पात्र वे ही होते हैं जो मेरे पास के लोग हैं."

लोकनायक का जवाब : रेणु के नाम

पटना
14 अगस्त 1974

प्रिय रेणुजी,

आपके पत्र के लिए अनेक धन्यवाद.

पत्र पढ़कर बड़ा उत्साहित और भविष्य के लिए आशान्वित हुआ.

आपके पत्र से जहां एक ओर यह प्रकट होता है कि यह शासन कितना नीचे उतर सकता है, वहां दूसरी ओर यह भी सिद्ध होता है कि जहां भी जनता को सही नेतृत्व मिलता है वहां वह कितना ऊंचा उठ सकती है और तब वह क्या नहीं कर सकती है.

आपके पत्र से एक और बात प्रकट होती है कि यदि शासन के कुछ अधिकारी, जैसे फारबिसगंज के बी. डी. ओ., शासन की भ्रष्ट नीतियों के कट्टर समर्थक बने हुए हैं तो दूसरी तरफ पुलिस के सिपाही तथा अन्य गरीब तबके के अधिकारी हृदय से इस क्रांतिकारी संघर्ष के साथ हैं, क्योंकि वे इसमें अपनी भी मुक्ति देखते हैं. इनमें से कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं जो मार-पीट और बर्बरता के अन्य काम कर डालते हों. परंतु मेरा विश्वास है कि सरकारी क्षेत्रों का गरीब वर्ग दिल से हम लोगों के साथ है; आज भले ही उन्हें अपने पेट के लिए गुलामी करनी पड़ती हो.

आप मेरे स्वास्थ्य की चिंता करते हैं परंतु मुझे आपके स्वास्थ्य की अधिक चिंता है. पूर्णियां मंडल कारा का जो हाल आपने लिखा है, उस पर से भय होता है कि वहां आपका स्वास्थ्य अधिक बिगड़ न जाये. यथासंभव स्वास्थ्य पर ध्यान रखियेगा.

मैं अभी अच्छी तरह हूं, लेकिन कुछ दिनों से हाथ की उंगलियों के जोड़ों में कुछ दर्द होने लगा है. अभी जांच वगैरह चल रही है.

आपका सस्नेह,
जयप्रकाश नारायण

रेणु : सांस्कृतिक क्रांति के अग्रदूत

▣ जयप्रकाश नारायण

रेणुजी के असामयिक निधन से जो अपूरणीय क्षति समाज और साहित्य को हुई है, उसकी पूर्ति तो तत्काल क्या भविष्य में भी संभव नहीं दिखती. वे मेरे सम्मानित मित्र और सहयोगी थे. जन-आंदोलन में भी उनका योगदान अभूतपूर्व रहा है.

मैं जब मुशहरी में था तो मैंने उन्हें एक पत्र लिखा था : 'गांव की कठोर वास्तविकताओं को निकट से देखने का यहां अवसर मिला है. 23 वर्षों के स्वराज्य के बावजूद भारत माता का आंचल सचमुच कितना मैला है. . . . मैं चाहता हूं आप जैसे साहित्यकार इन वास्तविकताओं को आकर देखें और उनकी तस्वीर साहित्य में उतारें.'

'मैला आंचल' लिख कर रेणु ने साहित्य-लेखन या उपन्यास-लेखन की जो परंपरा शुरू की थी, वह समाप्त हो गयी-सी लगती है. आज की पृष्ठभूमि में उसे पुनर्जीवित कर आगे बढ़ाने की जरूरत है. यह तो जाहिर है कि इस देश में भावी क्रांति का क्षेत्र गांव ही होगा और नवनिर्माण का आरंभ भी वहीं से होगा. अतः क्रांतिकारी नवसाहित्य सृजन गांव में बैठ कर ही किया जा सकता है.

1972 में जब वे निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में चुनाव लड़े थे, तो एक पात्र भी उनका प्रेरणा स्रोत था, ऐसा मुझे बताया गया था.

बिहार के जन-आंदोलन में संपूर्ण क्रांति और सांस्कृतिक क्रांति को जिस प्रकार से उन्होंने जोड़ा था, वह भी अविस्मरणीय है. नुक्कड़ों पर बुद्धिजीवी कविता सुनाते थे, नाटक करते थे और आंदोलन संबंधी पेंटिंग्स की प्रदर्शनी किया करते थे. यह सब रेणुजी के मार्गदर्शन में होता था. लेकिन रेणु यहीं तक ही नहीं रुके. वे जनता के लिए अपने स्वास्थ्य की चिंता न कर जेल जाने से भी नहीं हिचके.

वे एक सच्चे सत्याग्रही थे. 1974 में जब वे जेल में थे तो उनके स्वास्थ्य को सामने रखकर मैंने उनसे अनुरोध किया था कि वे जमानत पर रिहा हो जायें. लेकिन वे जमानत पर रिहा नहीं हुए.

जब पिछले दिनों वे पटना अस्पताल में थे तब भी मैंने उनसे अनुरोध किया था कि वे जसलोक जाकर अपनी चिकित्सा करवायें. लेकिन उन्हें अपने साथ के साधारण मरीजों का साथ छोड़ना पसंद नहीं था. . . !

जब उनके ऑपरेशन की तारीख तय हो गयी थी, तो उस समय पूरा देश तानाशाही के खिलाफ लड़ रहा था. रेणुजी अपना ऑपरेशन टाल कर, अस्पताल से निकल कर मुझसे मिले थे और चुनाव आंदोलन के प्रचार कार्य की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी, जिसके कारण उनकी तबीयत और बिगड़ गयी थी.

रेणुजी की बड़ी इच्छा थी कि उनकी कथा 'तीसरी कसम' पर बनी फिल्म मैं देखूं, लेकिन मैं उसे देख नहीं पाया. मेरे मित्रों ने मुझे ऐसा बताया है कि वह एक महान फिल्म थी, मुझे यह भी बताया गया है कि 'मैला आंचल' पर आधारित कोई एक फिल्म बन रही है. ऐसा भी संकेत मित्रों से मिला है कि उक्त फिल्म की निर्माण प्रक्रिया में 'मैला आंचल' की आत्मा के साथ न्याय नहीं हो रहा है.

फिल्मों के संबंध में मेरा ज्ञान एक साधारण नागरिक के स्तर का ही है—फिर भी समाचार-पत्रों और मित्रों के माध्यम से पता चलता रहता है कि हमारी फिल्में जनता की वास्तविक दशा का चित्रण नहीं करतीं. साहित्यिक कृतियों पर बनी फिल्मों

"मैं ठीक हूं . . . आप कैसे हैं ?" अस्पताल में रेणु और लोकनायक एक दूसरे का हालचाल पूछते हुए

को प्रायः पैसा कमाने की प्रवृत्ति के कारण या कृति को न समझ पाने के कारण बिगाड़ दिया जाता रहा है.

रेणुजी संपूर्ण क्रांति के एक आयाम-सांस्कृतिक क्रांति के अगुआ थे. फिल्मों के माध्यम से भी संपूर्ण क्रांति के काम को सार्थक रूप से संचालित किया जा सकता है.

मेरी राय में रेणुजी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि यही हो सकती है कि उनकी जमीन से जुड़ी साहित्यिक धारा को ही नहीं, बल्कि समय की सही पहचान कराने वाली और समाज की वास्तविक दशा का चित्रण करने वाली फिल्में बनायी जायें ताकि संपूर्ण क्रांति का एक आयाम—सांस्कृतिक क्रांति की प्रक्रिया तीव्र हो सके. □

दो श्रद्धांजलियां

खोयी हुई चीज़

▣ विश्वेश्वर प्रसाद कोईराला

रेणु मुझे सांदाजु कहता था. नेपाली में सांदाजु का अर्थ होता है : बड़े भाई से छोटा लेकिन अपने से अग्रज. हम पांच भाइयों में मातृका प्रसाद कोईराला ज्येष्ठ हैं. हम अनुज उन्हें ठुल्दाजु अर्थात बड़े भैया कहते हैं. उनसे छोटा मैं हूं. अन्य तीन भाइयों में बड़ा होते के नाते मैं उनके लिए सांदाजु बना.

1935 से, जब मेरा परिचय रेणु से हुआ तब से, हम घनिष्ठ ही रहे, यद्यपि बीच-बीच में हमारा संपर्क टूट जाया करता था. दिसंबर 1976 में 8 वर्षों के निरंतर आत्मनिर्वासन के बाद मैं स्वदेश लौटने की तैयारी कर रहा था. उसी सिलसिले में मैं पटना पहुंचा, जहां से 30 दिसंबर को काठमांडो जाने का मेरा कार्यक्रम निश्चित हो गया था. लेकिन काठमांडो जाने से पहले मैं जैसे भी हो रेणु से मिलना चहता था. पटना में अपने कुछ मित्रों से उसके बारे में पूछने पर मुझे पता चला कि वह एक स्थानीय अस्पताल में इलाज के लिए दाखिल हुआ है. उस समय रात के दस बज चुके थे. मैं उतावली में उसी समय उससे मिलने उस अस्पताल की ओर दौड़ पड़ा. ऐसे कुसमय में रोगी से मिलना अनुचित है, यह जानता था; पर दूसरे दिन प्रातःकाल ही काठमांडो के लिए प्रस्थान करना था इसलिए रेणु से मिलने का समय टालने की कोई गुंजाइश न थी.

अस्पताल में शैयालीन रेणु को देखा. वह एक कंकाल बना हुआ था. डाक्टर ने बताया कि वह कुछेक जानलेवा रोगों से ग्रस्त है, लेकिन मेरे लाख मना करने पर भी रेणु उठ बैठा और मेरे पांव छूकर गोया कुछ खोयी चीज पाकर गदगद हो गया! □

रेणु समकालीन हिंदी साहित्य के संत लेखक थे

▣ निर्मल वर्मा

मैं उनसे केवल दो-तीन बार मिला था; पर आज भी मैं आंखें मूंदकर उनका चेहरा हू-ब-हू याद कर सकता हूं—उनके लंबे झूलते बाल, एक संक्षिप्त-सी मुस्कराहट जो सहज और अभिजात सौजन्य में भीगी रहती थी. . . . किंतु जिस चीज ने सबसे अधिक मुझे अपनी तरफ खींचा, वह उनका उच्छल हल्कापन था. वह छोटे-छोटे वाक्यों में संन्यासियों की तरह बोलते थे और फिर शरमाकर हंसने लगते थे. उनका 'हल्कापन' कुछ वैसा ही था जिसके बारे में चेखव ने एक बार कहा था, "कुछ लोग जीवन में बहुत भोगते-सहते हैं—ऐसे आदमी ऊपर से बहुत हल्के और हंसमुख दिखायी देते हैं. वे अपनी पीड़ा दूसरे पर नहीं थोपते, क्योंकि उनकी शालीनता उन्हें अपनी पीड़ा का प्रदर्शन करने से रोकती है."

रेणु ऐसे ही 'शालीन' व्यक्ति थे. पता-नहीं जमीन की कौन-सी गहराई से उनका हल्कापन ऊपर आता था. यातना की कितनी परतों को फोड़कर उनकी मुस्कराहट में बिखर जाता था—यह जानने का मौका कभी नहीं मिल सका.

जिस व्यक्ति को केवल दो-तीन बार देखा था उसके न रहने से मुझे अपनी लिखने की दुनिया इतनी सूनी और सुनसान जान पड़ने लगेगी, मैंने कभी ऐसा नहीं सोचा था. . . .

वह समकालीन हिंदी साहित्य के संत लेखक थे.

यहां मैं 'संत' शब्द का उसके सबसे मौलिक और प्राथमिक अर्थों में इस्तेमाल कर रहा हूं—एक ऐसा व्यक्ति, जो दुनिया की किसी चीज को त्याज्य और घृणास्पद नहीं मानता—जीवित तत्व में पवित्रता और सौंदर्य और चमत्कार खोज लेता है—इसलिए नहीं कि वह इस धरती पर उगने वाली कुरूपता, अन्याय, अंधेरे और आंसुओं को नहीं देखता, बल्कि इन सबको समेटने वाली अबाध प्राणवत्ता को पहचानता है; दलदल को कमल से अलग नहीं करता, दोनों के बीच रहस्यमय और अनिवार्य रिश्ते को पहचानता है. सौंदर्य का असली मतलब मनोहर चीजों के पारस्परिक सार्वभौमिक, दैवी रिश्ते की पहचान होता है—इसलिए उसमें एक असीम साहस और विवेक तथा विनम्रता छिपी रहती है. इस अर्थ में हर संत व्यक्ति अपनी अंतर्दृष्टि में कवि और हर कवि अपने सर्जनात्मक कर्म में संत होता है. रेणुजी का समूचा लेखन इस रिश्ते की पहचान है. इस पहचान की गवाही है और यह गवाही वह सिर्फ अपने लेखन में ही नहीं, जिंदगी के नैतिक फैसलों, न्याय और अन्याय, सत्ता और स्वतंत्रता की संघर्ष-भूमि में भी देते हैं. . . .

रेणु ने बहुत निकट से मनुष्य की पीड़ा, मजबूरी और गरीबी को पहचाना था. . . वह अपने साथ अनुभव की पूरी संपदा लाये थे. ये अनुभव उनके उपन्यासों में इतने ताजे और तात्कालिक जान पड़ते हैं कि लगता है जैसे उनके पात्रों में मिट्टी के जर्रे चिपके हैं, जिन्हें अभी-अभी उन्होंने धरती से निकालकर अपनी कथाओं में पिरोया है. उन्होंने जिस सूक्ष्म संवेदना और गहरे लगाव से बिहार के एक अंचल पूर्णियां की जमीन को कुरेदा था, उसके फैलाव को महान और मांसल छवियों में ध्वनित किया था, उसके लिए गद्य की भाषा को अप्रत्याशित रूप से काव्यात्मक मुहावरे में ढाला था—वह हिंदी उपन्यास में एक अभूतपूर्व घटना थी. . . .

मैं रेणुजी की मृत्यु को असामयिक नहीं कहूंगा. हर मृत्यु एक तरह से असामयिक होती है, क्योंकि जिंदगी का कारोबार किसी बिंदु पर पूरा नहीं होता, किंतु इस खास दौर में—इमर्जेंसी की यातना के बाद उनका अचानक हमारे बीच से चला जाना बहुत क्रूर और असहनीय जान पड़ता है. यह उनकी विजय का क्षण था और वह नहीं हैं! □

वह रात अब तक याद है, मां को. अचानक ऐसा लगा जैसे कहीं दूर से उसकी बुलाहट हो रही है. वातावरण शांत, निस्पंद लेकिन आकर्षक था. उसके चतुर्दिक फूलों के पांवड़े बिछे हुए थे. हल्की-हल्की सुगंध बिखरती वातावरण को मोहक बनाती शीतल बयार. मां को मीठी नींद आ रही थी. लेकिन स्वप्न में मानो स्वर्ग उतर आया था धरती पर. अचानक एक आवाज़ उभरती सुनायी पड़ी और वह मंत्रमुग्ध-सी आवाज़ की ओर चल पड़ी. अब मानो वह परियों की दुनिया में आ गयी थी. मंदिर के घंटे की टन्..टन् की आवाज़ उसके कर्ण-कुहरों में प्रवेश कर रही थी. बीच-बीच में बहुत ही शांत और गंभीर आर्ष-पुरुष की आवाज़ उसे अपनी ओर खींच रही थी और वह बढ़ी जा रही थी स्वयं उसकी ओर.

रास्ता लंबा था लेकिन दूरी का पता ही न चला. ध्वनि निरंतर स्पष्ट होती जा रही थी. टन्...टन्...टन्.. आओ...ऽऽ..आओ..ऽ..ऽ आओ. ध्वनि के पास पहुंचकर मां ठिठकी. सामने एक गुरुकुल था जिसमें कई शिष्य विद्याध्ययन कर रहे थे. उन्नत ललाट, तेज और ओज से परिपूर्ण गंभीर मुद्रा में एक गुरु उन शिष्यों को शिक्षा दे रहे थे. मां को देखते ही गुरु श्रद्धापूर्वक उठ खड़े हुए, "आओ देवि! तुम्हारा ही इंतजार कर रहा था. इधर देखो, यह बालक तुम्हारा ही पुत्र है." गुरु ने एक तेज, प्रतिभासंपन्न ओजस्वी बालक की ओर इशारा करते कहा, "मैंने इसे संपूर्ण शिक्षा दे दी है. मेरा काम पूरा हो गया. अब इसे तुम अपने साथ ले जाओ."

मेरा पुत्र! मां को आश्चर्य हुआ. "यह आप क्या कह रहे हैं महाराज? मेरा तो कोई पुत्र नहीं. हां, एक पुत्री अवश्य है जो कि मेरे पास है. यह कैसी अनहोनी बात है. भला मैं किसी बच्चे की मां कैसे हो सकती हूं?"

"नहीं देवि! तुम चौंको मत. मैं सच कहता हूं. मेरे ऊपर विश्वास करो. यह तुम्हारा ही पुत्र है. इसे ले जाओ."

"लेकिन यह कैसे हो सकता है?" मां कतई मानने को तैयार नहीं. उसके स्वर में दृढ़ता थी.

रेणु के जन्म की कहानी—मां की ज़ुबानी

रेणुजी के गांव के निकट का स्टेशन 'सिमराहा' जो अब तक वैसे का वैसा ही है. 4 मार्च, 1979 से इसका नाम 'रेणु गांव' हो गया है. छाया : जयशंकर

"तुम्हें इस बालक को ले जाना पड़ेगा, अपने साथ. अब मैं पल भर के लिए भी इसे अपने आश्रम में नहीं रख सकता." गुरु की वाणी में दृढ़ता के साथ ही एक अनुनय भी था. मां अवाक्. यह कैसी मुसीबत है प्रभु!

पलट कर वह घर की ओर दौड़ने लगी. वह लस्त-पस्त थी. सांसें फूल रही थीं. जोरों से हांफ रही थी वह.

गुरु की गंभीर वाणी, घंटे की टन्... टन्...की आवाज़—दोनों उसका पीछा कर रहे थे.

उसी क्षण स्वप्न-भंग हुआ. और उसी रात हिंदी साहित्य के अमर साहित्यकार फणीश्वरनाथ रेणु ने मां के गर्भ में प्रवेश लिया. कहते हैं, महापुरुषों के जन्म-काल में कोई न कोई अदभुत घटना अवश्य घटती है. रेणु का जन्म भी नौवें महीने के बजाय दसवें महीने में 4 मार्च 1921 को औराही-हिंगना में हुआ था. □

प्रस्तुति : विजय अग्रवाल रजनीश के सौजन्य से—अमरेंद्र मिश्र

श्रीमती पद्मा रेणु से अंतरंग बातचीत

मुझे अपनी सफ़ाई देने की ज़रूरत नहीं पड़ती!

श्रीमती पद्मा रेणु : ये आंखें अब भी उनकी बाट जोहती हैं!

श्रीमती पद्मा रेणु बरामदे में चटाई पर बैठी थीं— उदास, गुमसुम. आंगन में कबूतर चावल के दाने चुग रहे थे. कबूतरों को देखकर उन्हें सहसा रेणु याद आ गये. —"सवेरे उठते ही सबसे पहले कबूतरों के आगे चावल के दाने छींट दिया करते थे. उसके बाद ही लिखना-पढ़ना शुरू करते. कभी-कभी पूछा करते—'आज तो सब भूखे होंगे?' खास तौर से तब, जबकि वे दो-तीन दिन के लिए कहीं से लौटकर आते थे तो आते ही पहला सवाल इन्हीं पर करते थे. लेकिन अब तो जैसे इनके लिए भी सब वीरान-सा है!"

—लतिका जी से आपके संबंध कैसे रहे हैं?

मेरी शादी के दो वर्षों बाद लतिका जी से उन्होंने शादी की. शादी के तुरंत बाद दो महीने लतिका जी ने औराही-हिंगना में बिताये थे. लेकिन उनका रहन-सहन कतई गांव की तरह नहीं था. संबंध की बात मैं क्या बताऊं, मुझसे कभी खुलकर बातचीत नहीं हुई. हम दोनों को कभी अवकाश नहीं मिला कि दोनों एक-दूसरे को पहचान पायें!

श्रीमती पद्मा रेणु और खाली टप्पर गाड़ी : अब हीरामन कभी नहीं बैठेगा इस पर!

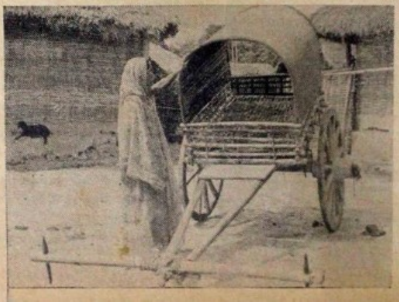

—रेणु जी कब और कैसे लिखते थे?

उन्हें एकांत बेहद कचोटता था. फुर्सत के वक्त किसी से बात करना अच्छा लगता था. लेखन के समय वे अमराई में चले जाते थे. वहीं चारपाई डालकर लिखते रहते.... खाना वहीं पहुंच जाता. रात में बहुत कम सोते थे. अक्सर दो बजे रात से लिखना शुरू करते थे. शांतचित्त से सारा काम निपटा लेते थे. गुस्सा नहीं करते थे लेकिन जब गुस्सा आ जाता तो रोकना भी मुश्किल होता.

—आपकी छोटी लड़की का नाम 'वहीदा रहमान' क्यों है?

वहीदा का नामकरण 'तीसरी कसम' की यादगार है. जब इस फिल्म का मुहूर्त निकल रहा था, उसी रोज़ इसका जन्म हुआ था.

—सुना है रेणु जी तांत्रिक भी थे?

हां. बहुत देर तक काली की पूजा किया करते थे. रात में कभी-कभी श्मशान घाट चले जाते थे और वहां रात में चार-चार घंटे पूजा किया करते थे. उन्हीं को देखकर मैंने भी पूजा शुरू की थी. खुद दाहिनी हथेली की बीच की अंगुली में उन्होंने तांत्रिक अंगूठी पहन रखी थी. परेशानी और भय से घबराये हुए लोगों को मंत्रोच्चारण द्वारा सांत्वना और शांति दिया करते थे.

—रेणु जी की दो पत्नियां थीं. इस स्थिति में उनके प्रति आपकी कोई शिकायत भी होगी?

नहीं. ऐसी कोई शिकायत नहीं रही. वे मुझे बहुत आदर देते थे. पटना से लौटने पर घर का समूचा दायित्व अपने जिम्मे ले लेते और मेरी सहायता मांगते. उन्होंने मुझे कभी महसूस नहीं होने दिया कि मैं उपेक्षित-सी हूं. मैं तो विधवा औरत थी. पति के मरने के बाद उन्होंने मेरा हाथ थाम कर ही कितना बड़ा उपकार किया. उनसे मैं किसी प्रकार की शिकायत कैसे रख सकती हूं. □

प्रस्तुति : अमरेंद्र मिश्र
छायांकन : जयशंकर

श्रीमती लतिका रेणु से अंतरंग बातचीत

मैं बोली...आप कहां चले गये?

राजेंद्र नगर, पटना स्थित ब्लॉक नंबर दो, कमरा नं. तीस. इस फ्लैट को रेणुजी ने लीज़ पर सरकार से 24-25 वर्ष पहले लिया था. तीसरे तल्ले पर दो छोटे कमरे. न बच्चे, न सेवक-सेविका. अपने से ही सब काम. चारों ओर स्वच्छता-सुव्यवस्था. शांति. यदा-कदा ही किसी का भेंट के निमित्त आना-जाना. स्थानीय राममोहन राय सेमिनरी में शिक्षिका. बी. ए., एम. ए. बी. एड. सब विवाह के बाद किया. पहले सरकारी अस्पताल में परिचारिका रहीं. समर्पित जीवन. रेणुजी के समय में एक छोटा नेपाली कुत्ता दरवाज़े पर बंधा रहता था जो बाहर किसी की आहट पर भौंकने लगता था. आज (27 दिसंबर, 1978) उसे नहीं देखा. संयोग की बात . . . श्रीमती लतिका रेणु घर पर मिल गयीं.

उत्साह, स्फूर्ति, होंठों पर मुस्कान. मैंने अपना अभिप्राय बताया, रेणुजी पर लेख लिखना है. वह सहर्ष तैयार हो गयीं. कहा, "पूछिये, खुद लिखना तो मेरे लिये पहाड़ है!"

—रेणुजी कब और कैसे लिखते थे?

रात ही में. दिन भर गपशप या सोकर बिता देते थे. रात दस-ग्यारह बजे के बाद ही लिखते थे . . . भोर तक. लिखना भी मेज़-कुर्सी पर नहीं, पूरा बिस्तर लगाकर. आधा लेटकर लिखते थे. डबल तकिया . . . काफी ऊंचा करके. जब तक लोग सो नहीं जाते, लिखते नहीं थे. लिखते समय खाने के लिए बुलाना मुश्किल था, बिगड़ते थे.

—खाने में उन्हें क्या पसंद था?

काफी शौकीन थे. खिचड़ी, मीट, मछली . . . हिलसा सबसे ज्यादा. सबसे बड़ी एवं महंगी मछली खाते थे. दाल में चना. उसमें भी मीट का कीमा देकर. खाते कम थे, पर हर तरह का चावल घर में आता था. चूड़ा काफी पसंद था. खीर ताज़ा नहीं बासी खाते थे. चीनी ऊपर से डालते थे. बनाना मुश्किल था . . . उनकी पसंद का . . . हरा चना काफी पसंद था, पर भूंज कर. मसाला किसी भी चीज़ में कम पड़े तो बोलते थे . . . घास ही खाकर रहो! खस्सी का मीट नहीं, चिड़िया का मांस, नहीं तो मुर्गा. बोलते थे, बाज़ार का कटा मीट भी कोई खाना है. डालडा छूना भी पाप समझते थे . . . 'डालडा खाने से तो लोग अंधे हो जाते हैं'. ऐसा बोला करते थे. धनिया की चटनी प्रतिदिन अवश्य हो . . . उनका खिचड़ी बनाना भी बड़ा मुश्किल था. मूंग की दाल, आधा चावल, बिना मसाला . . . काफी पतला. दोबारा पानी पड़ जाने पर नहीं खाते थे. प्रिंस होटल (पटना) के कुक्क बुलाकर हिलसा मछली बनवाते थे. मैंने भी कई चीजें बनाना उसी से सीखीं. बंगला खाना काफी पसंद था. हज़ारीबाग मेरे घर, मेरी मां के हाथों का खाना खाने जाते थे. सब्ज़ी करीब-करीब नहीं ही खाते थे. मूली कच्ची खाते थे. रोज़ मांस-मछली. रात में मछली कभी नहीं खाते थे.

—अंतिम बार उनसे आपकी क्या बात हुई?

कुछ भी नहीं. आपरेशन के बाद बोले, "कोकाकोला हमें पिला सकती हो?" मैं बोली, डाक्टर ने मना किया है. बोले, "छोड़ो, वे लोग तो मेरा पेट काट ही रहे हैं."

रेणु और तिप्पी:—अब वह किसी की आहट नहीं लेता.

आपरेशन रूम चलते समय सभी साथियों को प्रणाम किया. ट्राली में बैठकर भी . . . परमहंस स्वामीजी रामकृष्ण की तस्वीर ले उसे प्रणाम किया. चलते समय ऐसा चेहरा बना लिया मानो पूर्वाभास हो गया हो कि हम जा रहे हैं. आपरेशन के बाद तो बेहोश ही रह गये.

—अपनी किताबों में वे किसे श्रेष्ठ मानते थे?

सभी किताबों को बड़े चाव से पढ़ते थे. 'मैला आंचल' से लेकर अभी तक की अपनी किताबें ऐसे पढ़ते मानो पाठक ही हो. कहते भी थे. अपनी लिखी कहानी कई बार पढ़ते थे. 'मैला आंचल' ही को ज्यादा मानते थे . . . 'परती-परिकथा' भी.

—क्या मृत्यु के पश्चात् जाग्रत या स्वप्नावस्था में उन्हें देखा है?

देखा है. मरने के एक दिन बाद ही. देखा आंखें उनकी बंद हैं और उनका हाथ मेरे मुंह पर रखा है कि मैं उठ गयी. फिर एक दिन देखा काफी सुंदर लग रहे थे. मैं बोली भी . . . आप कहां चले गये! एक दिन गंगा किनारे देखा. पानी के किनारे खड़े हैं. बोलने पर भी कोई जवाब नहीं दिया. फिर कभी नहीं या और कोई नहीं. □

प्रस्तुति : सुधांशु भूषण नारायण

रेणु : आंदोलन की स्मृतियां

हमारी कलम अब हथियार है हमारा दुशमन भ्रष्टाचार है!

रेणुजी से पहले पटना के किसी प्रसिद्ध रचनाकार ने कॉफी-हाउस को अपना अड्डा नहीं बनाया था. जब स्वर्गीय नलिन विलोचन शर्मा थे तो अक्सर कुछ साहित्यिक शाम में हिंदी सम्मेलन भवन में जुटा करते थे. दिनकरजी भी दिल्ली से वापस आने के बाद कभी-कभार कॉफी हाउस में दिखायी दे जाते थे. पर रेणुजी जब भी पटना में होते वे बिना नागा, केवल बंदी के दिन को छोड़ कर 'इंडिया कॉफी हाउस' के किसी कोने में अपने साहित्यिक मित्रों के संग बैठे दिखायी दे जाते थे. नयी पीढ़ी के रचनाकारों से वह सदा संपर्क रखते थे और उन्हें प्रोत्साहित करते थे. यही कारण था कि उनकी शाम युवा रंग-कर्मियों, कवियों, कथाकारों, पत्रकारों, फिल्मकारों और नेताओं के बीच गुजरती थी. इस प्रकार पटना की वह सांस्कृतिक धुरी बन गये थे.

न टूटे तिलस्म सत्ता का, मेरे अंदर एक कायर टूटेगा!

मेरा उनसे निकट संपर्क बिहार आंदोलन के दिनों में हुआ. गुजरात आंदोलन में लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार श्री उमाशंकर जोशी से प्रेरणा ग्रहण करते हुए उनके अंदर का शोला धधक उठा था. फिर कॉफी-हाउस में 15 अप्रैल, 1974 की शाम को उन्होंने 17 अप्रैल को पांच साहित्यकारों द्वारा जन-संघर्ष के समर्थन में अनशन पर बैठने की योजना बनायी. नागार्जुन भी उस समय वहां उपस्थित थे. 16 अप्रैल को 'आर्यावर्त', 'प्रदीप', 'इंडियन नेशन' आदि दैनिक समाचार पत्रों में प्रस्तावित अनशन के समाचार छापे गये. फिर 7 बजे सुबह पूर्व-घोषित चार अनशनकारियों (रेणु, नागार्जुन, रवींद्र राजहंस, जुगनू शारदेय) के अतिरिक्त दो अन्य व्यक्ति भी शामिल हुए, श्री दामोदर अंबष्ठ एवं मधुकर सिंह.

रेणुजी ने 16 अप्रैल की रात में ही अनशन शिविर पर टंगवाने के लिए कई प्लेकार्ड तैयार करवा लिये थे, जिन पर कुछ काव्य-पंक्तियां अंकित थीं :

"कुछ होगा, कुछ होगा अगर मैं बोलूंगा/
न टूटे, न टूटे तिलस्म सत्ता का
मेरे अंदर एक कायर टूटेगा"
(रघुवीर सहाय)

"तीर पर कैसे रुकें हम / आज लहरों में निमंत्रण"

"समर शेष (क्षेत्र) है नहीं पाप का भागी केवल व्याध/जो तटस्थ है समय लिखेगा उनका भी अपराध"
(दिनकर);

"हमारी कलम अब एक हथियार है, हमारा दुश्मन भ्रष्टाचार है"

'मृत्यु खबर दिच्छे दिन गुलि दुश्मनेरा हृदयहीन / शयतान लड़ाइते प्राण दिच्छे आमादेर संतान" (नाज़िम हिकमत की कविता का रेणु कृत अनुवाद).

इन हस्तलिखित कूट की तख्तियों के साथ टांगे गये अरुण कुमार मिश्री, प्रतीक कुमार सिन्हा एवं पटना राजकीय कला महाविद्यालय के अन्य छात्रों द्वारा पुलिस-दमन, भ्रष्टाचार, कुशिक्षा, मंहगाई, कालाबाज़ारी पर बनाये गये कई चित्र. 'लखनऊ स्वीट हाउस' के चबूतरे पर अंततः अनशन पर बैठे पांच जन चबूतरे के सामने गड़े बांस के एक खंभे पर अनशनकारियों के नाम लिखे थे. एक और कूट पर लिखा हुआ था—'जन संघर्ष में लेखक!'

इसके पूर्व भी साहित्यिकों द्वारा एक अनशन 'बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन भवन' में हुआ था जहां पर एक कपड़े के बैनर पर लिखा गया था—'साहित्यिक भी अनशन पर!' रेणुजी का तर्क था कि 'साहित्यिक भी' में साहित्यिक के विशिष्ट जन होने की गंध मिलती है जबकि उसे जन संघर्ष में सामान्य नागरिक की तरह कूद पड़ना चाहिए.

अप्रैल की सुबह जब धीरे-धीरे गरम होने लगी और सभी अनशनकारी धूप में पटपटाने लगे तो प्रकाश होटल के व्यवस्थापक श्री महेश खन्ना के सौजन्य से उनके सिर पर एक चंदोवा बांध दिया गया. दिन भर कई प्रकार के लोग उस स्थान पर रुकते-ताकते-झांकते रहे. फिर अंत में चबूतरे के पास खड़ी मेरी दस वर्षीया बेटी रिमझिम ने सबको नींबू पानी पिला कर अनशन तुड़वाया. रेणुजी ने साफ कह दिया था कि वे किसी विशिष्ट व्यक्ति के हाथ से रसगुल्ले लेकर या फल का रस पीकर अनशन समाप्त नहीं करेंगे.

जन संघर्षी रचनाकार मंच

अनशन टूटने पर रेणुजी ने एक संक्षिप्त भाषण दिया था आंदोलन से अपने जुड़ाव के संबंध में. फिर नागार्जुन ने अपनी कविताएं सुनायीं. यही था प्रथम नुक्कड़ काव्य-पाठ जिसने शीघ्र ही अनेक समानधर्मा कवियों सर्वश्री सत्यनारायण, परेश सिन्हा, बाबूलाल मधुकर, गोपी वल्लभ सहाय, रॉबिन शॉ पुष्प, राम वचन राय, जुगनू शारदेय, वासुदेव शाह, लाल धुआं, विकट, दिल महेसवी, काशीनाथ पांडेय, बालेश्वर विद्रोही, रवींद्र भारती, राज इंकलाब आदि को नुक्कड़ काव्य-पाठ से जोड़ा. नुक्कड़ काव्य-पाठ 'जन संघर्षी रचनाकार मंच' के तत्वाधान में नगर के भिन्न-भिन्न चौराहों पर रेणुजी की अध्यक्षता में आयोजित होते.

नुक्कड़-काव्य-पाठ की समाप्ति पर आयोजक झोले में बेझिझक समुपस्थित श्रोताओं से पांच पैसा, दस पैसा सहयोग राशि के रूप में एकत्र करते. चंदा वसूली से प्राप्त रकम की लाउडस्पीकर से वहीं घोषणा कर दी जाती और प्रबंध पर किये गये खर्च का तत्काल ब्यौरा भी दे दिया जाता. स्वतंत्र लेखन वाले कवियों को सवारी भाड़ा दे दिया जाता. इस प्रकार बिहार आंदोलन के दौरान रचनाकारों और रंगकर्मियों में जो एक राजनीतिक चेतना जागी, उसका प्रमुख श्रेय रेणुजी को है.

अंग्रेजी का 'मुरकट्टा हिसाब'

रेणु से चेतन अवस्था में मेरी एक लंबी मुलाकात तब हुई थी जब वासुदेव साह के साथ गोथेन बर्ग विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र के एक शोधार्थी श्री गेडा नाझ अस्पताल पहुंचे थे. उन्होंने दो कैसेटों में रेणुजी के साथ अपनी लंबी बातचीत भरी थी. उस दिन रेणुजी को रह-रह कर पेट का घाव टीस रहा था. वह बातचीत के बीच आंखें मूंद लेते थे. वे अधिक बोलना नहीं चाह रहे थे. इसके अतिरिक्त उनको अपने विषय में अंग्रेजी में ठीक-ठीक समझाने में दिक्कत महसूस हो रही थी.

रेणुजी ने उस सांझ मुझसे दुभाषिये का काम लिया. उन्होंने कहा, "वैसे तो मैं अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएं पढ़कर समझ लेता हूं. 'मुरकट्टा हिसाब' जानता हूं जिसके सहारे मैं अंग्रेजी पुस्तकों को भी पढ़-समझ लेता हूं, मगर अंग्रेजी बोलने का अभ्यास नहीं है. अतः आप जरा इनको विस्तार से आंदोलन, अनशन, नुक्कड़ काव्य पाठ के विषय में समझा दीजिए. अपनी बात अंग्रेजी में समझाने में 'मुरकट्टा हिसाब' फेल कर जाता हूं." वह धीमे-धीमे मुस्कराने लगे थे.

किस्सा 'इस कगार से उस कछार तक' का

डा. श्रीनिवास पटना के एक प्रसिद्ध चिकित्सक हैं. उन्होंने अध्यात्म पर विचित्र पुस्तकें लिखी हैं. रेणुजी ने कहा कि इस रहस्यमय दाढ़ी वाले डाक्टर को इस बार कई लोग मिलकर समझने की कोशिश करेंगे. 'इस कगार से उस कछार तक' के लेखक को ठीक से समझना है. उस इंटरव्यू को वे 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' के 'बिहार-अंक' में भेजना चाहते थे. उसके लिए कई विधाओं से जुड़े व्यक्तियों की उन्होंने एक टोली बनायी. पूरे चार घंटे तक डा. श्रीनिवास को हम कई कोणों से पकड़ते-समझते रहे. रेणुजी सबके अलग-अलग 'इंप्रेशंस' को एक जगह गूंथ कर एक अद्भुत साक्षात्कार का अद्भुत अनुभव प्रस्तुत करने वाले थे. उन्होंने मुझसे कहा, "आपकी पत्नी का तो हाल ही में ई.सी.जी. हुआ था न, उसके कुछ स्ट्रिप्स मुझको रात में दे

रवींद्र राजहंस की एक कविता

रेणुजी अनशन पर

अनशन-शिविर में कुछ लोग
रेणु को होराबाई के रचयिता समझ झांकने आये
कुछ को पता चला कि नागार्जुन नीलाम कर रहे हैं अपने को
इसलिए उन्हें आंकने आये
कुछ को पता चला कि कुछ नाम मात्र के भूखे लेखक
कबाब बनने वाले हैं बाहर घंटे तक—
पिघली कोलतार की आंच पर
इसलिए आये
कुछ, कुछ कह रहे थे, कुछ, कुछ कह रहे थे
मगर ये वे कह रहे थे जो ट्रैफिक-पुलिस के संकेत पर
रुक गये थे बेमन अपनी गाड़ियों के अंदर
ये वे कह रहे थे
जो 'तृप्ति-केंद्र' में कोकाकोला-लिमका सुड़ुक रहे थे
ये वे कह रहे थे
जो 'लखनऊ स्वीट-हाउस' में मिठाइयों के पैकेट बंधवा रहे थे,
ये वे कह रहे थे
जो रिक्शों में नरम-गरम गोश्त लेकर हवाखोरी में निकले थे
ये वे कह रहे थे
जो क्रांति, झंडे और सीटी की आवाज पर कहते हैं
'अनशन-फनशन से कुछ नहीं होने वाला
जे. पी. ने सबका दिमाग खराब कर डाला
पद्मश्री बैठ गये चौराहे पर! क्यों सर?
बड़ा ऑड लगता है
हमें तो सब कुछ फ्राड लगता है!'

जाइयेगा. उसी पर अपने इंटरव्यू का शीर्षक अपने हाथ से खुद लिखूंगा." परंतु बीमारी के चलते वह अपनी रचना पत्रिका को नहीं भेज पाये.

रेणुजी डा. श्रीनिवास के 'इस कगार से उस कछार तक' के 'अर्वाक्कथन' से बहुत प्रभावित थे चूंकि वहां उनको आंचलिक भाषा की अनूठी भंगिमाएं मिली थीं. रत्नजोत बेचने वाले के कुछ जुमले याद कर वे वाह-वाह कर उठते थे —"मन में-में करता हो, हक-हक करता हो या अस-बस करता हो या कस-मस करता हो. . . तो राजाजी! रतनजोत लेलो जी!" कहकर वे हंसने लगते थे.

खुशी और चोट की अनगूंज

रेणुजी चले गये, बिना किसी से कुछ कहे. आपरेशन होने से पहले वे 'जनता पार्टी' की सरकार बनने की बात सुन चुके थे. वे बेहद खुश थे. उन्होंने मुझसे कहा था, "अगर आज इस कदर बीमार नहीं होता तो कॉफी-हाउस से 'महिला चर्खा समिति' तक पागलों की तरह दौड़ लगाता. मेरी खुशी का ठिकाना नहीं."

▣

आज रेणुजी नहीं हैं. इन्कमटैक्स भवन के पास वाली पुलिया पर उनकी पीठ पर पड़ी लाठी की चोट की अनुगूंज, गांधी-मैदान में पद्मश्री और सरकारी वजीफा लौटाने की घोषणा की ध्वनियां कहीं बहुत हल्के तरंगित हो रही हैं. आज चारों ओर टूटन है, बिखराव है. अच्छा हुआ उन जैसा संवेदनशील एवं जागरूक लेखक यह सब देखने से पहले ही उठ गया. □

▣ रवींद्र राजहंस

अवसान तक अंग-संग रहे रेणुजी के भतीजे जयशंकर की मननशील स्मृतियां

ऐसे थे रेणु चाचा !

चाचा-भतीजा : रेणु और जयशंकर

जब भी मैं रेणुजी के संबंध में सोचता हूं और कुछ लिखने बैठता हूं, पता नहीं चलता कहां से शुरू करूं. उनके साथ बिताये गये जिंदगी के वे महत्वपूर्ण पल जब याद आते हैं तो आंखों में आंसू उमड़ पड़ते हैं. उनकी रचनात्मक अवधि से मृत्यु-शय्या तक सिरहाने बैठा रहने वाला मैं आज अपने चतुर्दिक सिर्फ गहरी उदासी और अकेलेपन की स्थितियां पाता हूं. ये स्थितियां कचोटती हैं मुझे. अपने शयन-कक्ष की दीवारों पर अनके चित्र लटका दिये हैं मैंने. इसमें बीच के स्थान पर रेणु का एक बड़ा फोटो है. पहली पुण्य-तिथि पर जो माला पहनायी थी, वह अब उदास और सूख चली है. लेकिन रेणु चाचा वैसे ही मुस्करा रहे हैं.

अब आम खाकर ही पटना जाऊंगा . . .

रेणु के घर के बगल में उत्तर की ओर एक पुश्तैनी आम का बगीचा है पश्चिम की तरफ बांस-बाड़ी है. सिंदूरी संध्या के आते ही लंबे-लंबे लंगोटधारी बांस उजले बगुलों से लद जाते हैं. चिड़ियों का कलरव. . . .कोसी की छोटी-छोटी नहरें सुदूर तक फैले खेत को कई भागों में विभक्त करती पूरब की ओर चली जाती हैं. गांव के दक्षिण में 'कबिराहा मठ' है.किसी जमाने में यहां कबीर संप्रदाय के संतों का सतसंग हुआ करता था. ईंट की दीवार पर उगे हुए पीपल और पाकड़ के गाछ. ('मैला आंचल' में इनका वर्णन आया है) रेणु के जीवन के अधिकांश क्षण गांव में व्यतीत होते थे. गांव की सोंधी माटी की महक से उनका आत्मीय लगाव था. यही कारण था कि जब वे पटना से दो-चार दिनों के लिए गांव आते, तो कई महीने गांव में ही बिता देते. पटना, बंबई, दिल्ली, इलाहाबाद जैसे महानगरों की याद यहां आने पर उन्हें आती ही नहीं थी. गांव में वे गांव वालों के होते थे. जब हम बहुत जिद करते तो बड़े शहरों के विषय में बताया करते और फिर गांव पर चले आते. गांव से लतिकाजी को पत्र लिखा करते कि वे अमुक तिथि को पटना पहुंच रहे हैं. किंतु कभी भी निश्चित तिथि पर वे जा नहीं पाते थे. लतिकाजी को उनके गंवई-प्रेम का पता होता इसलिए निश्चित समय पर न पहुंचने पर भी वे चिंतित नहीं होतीं.

'सिरपंचमी' यानी वसंतपंचमी में उनका गांव पहुंचना जरूरी हो जाता था. इसी दिन से गृहस्थ खेती-बाड़ी की शुरुआत करते हैं. वसंत का आगमन. . . आम के गाछ मंजरियों से लद जाते हैं. . . . अमराई में कोयल कूकने लगती है. वातावरण मादक हो जाता है. तभी रेणु सोचते हैं . . . 'मंजर तो खूब आया है, अब आम खाकर ही पटना जाऊंगा.'

रेणु को आम प्रिय थे. अपने हर गाछ के आम का स्वाद याद था. . . . यह है 'काला बंबइया' आम, यह है 'किसुन भोग' और यह है 'सिंदूरिया'. . . ठीक सिंदूर के समान रंग. लेकिन आंठी पर खट्टा होता है. . . और यह है बच्चों का प्रिय आम 'चौरिया'. इसे खीरे के समान कच्चा ही खाओ. खट्टा नहीं होता.

बेनू माय! अब फसल कटवाकर ही जाऊंगा . . .

यदि गेहूं की बोआई के समय गांव आते तो खाद-बीज की चिंता उन्हें सताने लगती. बोआई के दिन से लेकर पौधा उगने तक रोज एक बार खेत की मुंडेर पर घूम-टहल आते. पौधा आ जाता तो फिर बालियों की प्रतीक्षा करते रहते. फिर घंटों बालियों के बीच बैठकर उनका 'झुन-झुन' करता संगीत सुना करते. पुलकित हुआ करते. थके-हारे शाम को घर लौटते और पत्नी पद्माजी से कहते . . . 'बेनू माय! अब मैं गेहूं की फसल कटवा कर ही घर जाऊंगा.'

अक्सर घर आने से पहले मुझे खत देकर सूचित कर दिया करते. खत में लिखा करते 'चार दिनों के लिए ही आ रहा हूं. गांव आना.' धान की रोपनी के दिनों में वे कीचड़ से भरे खेत में धान रोपा करते. जब धान के पौधे लहलहाने लगते, तो वे सहज भाव से कहते 'अब इस नये धान का चावल और चूड़ा खाकर ही पटना जाऊंगा' मेरी ओर मुखातिब होकर पूछा करते, 'नया धान का बनाया चूड़ा, मूली और नया ढेला गुड़ खाया है कभी?'

गांव आने के बाद शहर लौटने का नाम ही नहीं लेते थे. 'आज जाऊंगा..'कल जाऊंगा' कहते-कहते कई महीने गांव में बिता देते. रेणु चाचा जिस माटी की उपज थे उसका कोई भी कण उन्हें छोड़ने तक को तैयार नहीं था. वे इसे बखूबी जानते थे किंतु जब कुछ महीने गुजर जाते तो पद्माजी से पूछ बैठते, 'बेनु माय! मेरे इतने दिन यहां रहने से तुम लोगों को भार तो नहीं लगता? काफी तंग करता हूं न सबको ?. . . यह खाऊंगा-वह खाऊंगा. . . . यह नहीं खाऊंगा. . . . वह नहीं खाऊंगा. यदि मेरा यहां अधिक दिनों रहना बुरा लगे तो कहना, कल ही पटना चला जाऊंगा.'

उनका लिखने-पढ़ने का कमरा घास-फूस का बना था. मिट्टी से लिपी-पुती दीवार. यही उनका शयन कक्ष भी था. महानगरों की अशांति इसी में दूर होती थी उनकी. घर के एक कोने में अनाज की कोठी. चौकी पर रात-दिन सफेद मच्छरदानी लगी रहती. रेणु को खुशबूदार अगरबत्ती प्रिय थी. उसकी खुशबू भांप कर ही पता किया जाता था—वे अंदर हैं! घर के ओसारे पर एक चटाई बिछी रहती, जिस पर वे सिगरेट-चाय पिया करते.

अजी, साहित्यकार ऐसा ही होता है!

एक बार नागार्जुनजी रेणु के घर पधारे थे. मैंने भीतर जाकर उन्हें सूचना दी. रेणु चाचा बाहर निकले, तुरंत उसी क्षण. नागार्जुन जी ने कहा, "चार बार आ चुका हूं. मिलते ही नहीं थे."

रेणु मुस्कराये. तभी उनकी नजर नागार्जुन के कपड़ों पर गयी, जो अस्त-व्यस्त और मैले दिख रहे थे. रेणु ने इस संबंध में जब नागार्जुनजी को बताया तो उन्होंने, कहा, "साहित्यकार ऐसा ही होता है."

"अभी बताता हूं साहित्यकार कैसा होता है...."

कहकर रेणु अंदर चले गये. घंटे भर बाद बाहर निकले. लंबे घुंघराले सजे-संवरे बाल, सफेद कुरता-पाजामा एकदम झक-झक करता हुआ ... पांव में कीमती चप्पल. महंगा सेंट अपनी खुशबू बिखेरता. ... फिर कहा उन्होंने, "नागार्जुन, देखो साहित्कार ऐसा होता है!"

मुझे याद है. 16 दिसंबर 1976 को जब बीमार होकर मेरे घर फारबिसगंज आये तो उनके रहने के लिए ठीक वैसा ही फूस का मकान, मिट्टी की भीत और खुशबूदार अगरबत्तियों की भीनी-भीनी खुशबू की व्यवस्था थी. इन्हीं दिनों देश में आपात्स्थिति की लहर उठी थी. रेणु चाचा भूमिगत हो गये थे. पुलिस को उनकी तलाश थी. जेल जाने का उन्हें कोई डर नहीं था. लेकिन बीमारी की वजह से परेशान, वे कुछ दिन आराम करना चाहते थे. मेरे यहां उनके ठहरने की एक खास वजह यह भी थी कि शहर के जाने-माने डाक्टर महानंद झा का अस्पताल ठीक मेरे घर के पास ही है. चिकित्सा-सुविधाएं उपलब्ध थीं. इन्हीं दिनों उनके एक मित्र उनसे मिलने आये. कहा, "आप इतने महान लेखक इस कस्बे में क्यों सड़ रहे हैं? आपको किसी बड़े शहर में इलाज करवाना चाहिए!" रेणुजी ने कोई जवाब नहीं दिया. चुप-खामोश रह गये. लेकिन उनकी खामोशी साफ-साफ जाहिर कर रही थी कि उनकी बातों से उन्हें नाराजगी है.

उन मित्र महोदय के चले जाने के तुरंत बाद उन्होंने मुझे बुलाकर कहा, "जाने कैसे-कैसे लोग चले आते हैं...मेरा जन्म एक छोटे गांव में हुआ... पला-बढ़ा गांव में. लिखा भी गांवों पर. भारत की आत्मा जो गांवों में निवास करती है, उसी का लेखक हूं. जय, क्या तुम्हें मालूम है, मैं गांव क्यों आता हूं? थप्पड़ और मार खाने. यहां भोगने के लिए आता हूं मानसिक पीड़ा और आनंद!"

तीसरी कसम !

पिछले वर्ष 'मैला आंचल' पर आधारित 'डागदर बाबू' की शूटिंग हमारे यहां हुई थी. निर्देशक नवेंदु घोष, नंदिता ठाकुर, बलदेव खोसा, मोहनचोटी तथा कई कलाकार औराही-हिंगना

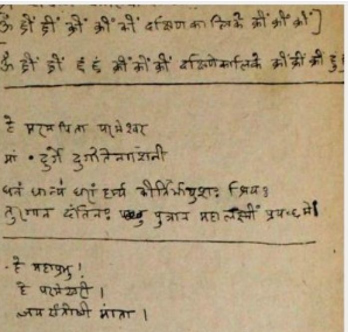

कहते हैं रेणुजी तांत्रिक भी थे. ईश्वर में उनकी अटूट आस्था थी—उनकी एक हस्तलिखित प्रति जिस पर मंत्रादि लिखे हुए हैं.

गये—रेणु-गांव. उस झोंपड़ीनुमा मकान का बदरंग रूप चुभ गया बंबई की आंखों में. आश्चर्य और कौतुहल! हंय्य! रेणु का घर? ऐसा? वही 'तीसरी कसम' वाला रेणु? कलाकारों ने घर की माटी मस्तक पर चढ़ायी... नवेंदु घोष उस चटाई पर खामोश बने बैठे थे जहां कभी रेणु बैठा करते थे और ठहाके लगाया करते थे. तभी बगल में रखे रेडियो से यह गीत बज उठा. 'डूब गये हम बीच भंवर में ना कोई उस पार...' नवेंदु घोष तिलमिला गये. डबडबायी आंखों के आगे 'फ्लेश बैक' में पटना का काफी हाउस, बंबई का मलाड होटल, पार्वती सदन और कविवर स्व. शैलेंद्र का निवास 'रिमझिम' नाच गया. फिल्म कलाकार वापस लौट गये. साहित्यकार वापस चला गया.

अभी कुछ नहीं लिखा मैंने ...

किसे पता था कि सब कुछ इतना जल्द हो जायेगा कि काल उन्हें अपने ग्रास में समेट लेगा! पटना अस्पताल में लंबी बीमारी के दौरान वे पहचान में भी नहीं आ रहे थे. टेलिग्राम आया था मेरे पास. हालत गंभीर! वे मौत की घड़ियां गिन रहे थे. डाक्टर ने शरीर में खून की कमी बतायी थी, सो कालेज के छात्र हजारों-हजार की संख्या में 'क्यू' बनाये खून देने को प्रस्तुत थे. रेणु शून्य में एकटक ताक रहे थे. सिरहाने बैठा मैं अवाक् था. कभी डाक्टर की ओर देखता था, कभी चाचा की ओर. मरने के दो-चार मिनट पहले बार-बार कह रहे थे—'बहुत काम पड़ा था अभी करने को. कुछ नहीं लिखा मैंने. जय, तुम उदास मत होना... ! □

प्रस्तुति : अमरेंद्र मिश्र

काठ के तख्ते पर मस्ती की करवट!

▣ रामकृष्ण

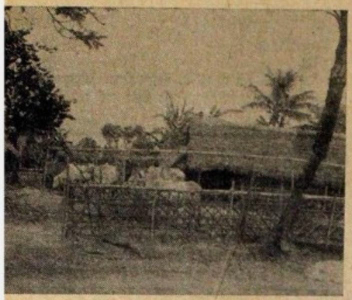

गांव औराही हिंगना : रेणु के घर के सामने का गोहाल.

अपनी पहली मुलाकात में रेणु मुझे वैसे नहीं लगे थे जैसा कि उन्हें लगना चाहिये था. साहित्यिक की लगन, जलन, दंभ, ईर्ष्या, आवेश, सौजन्य और वैमनस्य की सभी भावनाओं से दूर इतने साधारण किस्म के आदमी वह लगे थे कि उन्हें और किसी रूप में देखना खुद अपने ही मन के साथ छलावा करना होता. उनके साहित्य से उनके व्यक्तित्व का जैसे कोई मेल ही नहीं था—और यह जो बेमेलपना था वह भी अकारण नहीं था.

साहित्य का आडंबर और उसका प्रदर्शन चाहे हमें जितना भी आकृष्ट कर लेता हो, लेकिन निखालिस व्यक्तित्व से ज्यादा आकर्षक कोई भी दूसरी चीज नहीं हो सकती. सुगमता और सरलता का भी एक पृथक आनंद होता है, एक पृथक-सी तन्मयता जिसमें व्यक्ति को बाह्य आघातों-व्याघातों की कोई चिंता नहीं सताती कभी. और रेणु भी जब मिले तब पूरी तरह आत्म-तन्मय थे अपने आप में, कुछ इस तरह कि दूसरों के साथ दुराव रख पाना वहां और भी मुश्किल बात बन जाये. इस कारण थोड़ी ही देर पहले 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' के लेखक का जो विराट स्वरूप मन पर शून्य निसृत आकाश की तरह छाया हुआ था, वह नजर में समाते ही एक छोटे, शुभ्र तारे की तरह टिमटिमा कर रह गया.

फिर इस तारे का साथ कुछ इस तरह जुड़ा मन से कि महीनों अलग-थलग रहने पर भी, लगता था, जसे बरसों तक हम दोनों साथ-साथ रहते आये हों. और इस कारण ही मुलाकात के पहले जिस एक रेणु का नाम सुन रखा था मैंने, वह कई रेणुओं में बिखर गया. कहना पड़ेगा कि मैंने रेणु को कई रंगों में देखा है—अकेले भी, फ़िल्म निर्देशकों और पटकथा लेखकों के बीच भी और उन लोगों के बीच भी जो साहित्य के कर्णधार चाहे न बनते हों, लेकिन अपने आपको उसका सूत्रधार बताने में उन्हें कोई हिचक नहीं होती. और इन सब रंगों में मैंने देखा था कि रेणु में एक सरलता है, एक संकोच भी और एक ऐसी स्पष्टवादिता भी जो उनके व्यक्तित्व की कई परतों को खोल कर रख देती है. जिसके आगे उनकी कृतियों के सब पृष्ठ एक साथ ही फड़फड़ा उठते हैं.

उन दिनों मैं खुद भी नया-नया बंबई आया था. आते ही आते शैलेंद्र, बासु, भारती, राकेश, कृश्नचंद्र, चेतन आनंद, अब्बास, बेदी, गुलाबदास ब्रोकर और ऐसे ही दूसरे जाने-माने बंधुओं ने इस गर्मजोशी के साथ मुझे अपनी बाहों में उठा लिया था कि लगता ही नहीं था कि लखनऊ जैसी चुन्नी-मुन्नी नगरी को छोड़ कर बंबई जैसे महानगर में मैं आ बसा हूं. और उन लोगों की सूची में रेणु का नाम सबसे ताज़ा था... नाम क्या एक नग़मा था वह मेरे लिए, जिसने अपनी प्रतिध्वनि में मुझे इस क़दर आवृत्त कर डाला था कि फिर उससे मुक्त हो पाना संभव ही नहीं हो पाया.

कौन कहता है आप मेरी रचनाएं बांचें ही!

यों साहित्य के संसार में रेणु का नाम चाहे नग़मा न बन पाया हो तब तक, लेकिन उनकी कृतियों का नग़मा निश्चित ही बहुत ज़ोरों से छिड़ उठा था उन दिनों और वह नग़मा हर हिंदी पाठक के दिल-दिमाग़ में उस शास्त्रीय संगीत की तरह गूंजता रह गया था, जिसे न समझ सकने वाले व्यक्ति भी सिर्फ इसलिये उसे गुनगुना उठते हैं कि कहीं वह खुद अशास्त्रीय न करार दे दिये जायें. लेकिन हकीकत थी तो केवल यह कि रेणु को स्वयं यह नहीं मालूम था कि साहित्य की शास्त्रीयता क्या बला होती है. विशुद्ध लोकगीतों से पूरित उनके साहित्य का अफ़साना अपने आप ही जैसे बहुत बड़ा हो गया हो, जिसे सुनकर लगे रेणु ने भी फिल्म कलाकारों की तरह अपनी पेड-पब्लिसिटी करा ली है, या फिर किसी मनचले महत्वाकांक्षी व्यवसायी की तरह विविध भारती या रेडियो सीलोन जैसे प्रसारण केंद्रों से अपनी सांठ-गांठ जोड़ ली हो उन्होंने. लोगों ने जी भरकर रेणु की तारीफ की थी... और पानी पी-पीकर उन्हें कोसा था!

उस बार रेणु जब तक बंबई में रहे, रोज ही हम लोगों की कहीं न कहीं भेंट होती रही. कभी उनके होटल में, कभी मेरे अपने फ्लैट पर, कभी शैलेंद्र के 'रिमझिम' में और कभी उन गोष्ठियों-

समारोहों में जो हर दूसरे-तीसरे दिन किसी न किसी के द्वारा रेणु के स्वागत में आयोजित हुआ करते थे.

गोष्ठियों के बारे में वह कहा करते थे, "भाई, इन गोष्ठियों में जाने से जी घबड़ाता है. समझ में नहीं आता कि इन गोष्ठियों का सचमुच कोई प्रयोजन होता है या सिर्फ़ अपने मनोरंजन के लिए ही लोग वहां आते-जाते हैं!"

उन गोष्ठियों का असली प्रयोजन चाहे कुछ भी न होता हो, लेकिन उस शाम की एक गोष्ठी पूरी तरह रेणु की ही गोष्ठी थी. आशा से अधिक उस दिन वहां जमघट भी हो गया था—यह बात दूसरी है कि आगंतुकों में साहित्यकार कम और अफ़सरपेशा लोग ज्यादा थे और अफ़सरपेशा लोगों में भी अफ़सर कम और उनकी बीवियां ज्यादा थीं. और रेणु थे कि वहां जैसे छुईमुई बन गये हों.

गोष्ठी के बीच में ही रूज-लिपस्टिक से सजी-धजी एक अफ़सर-बीवी ने अपने गले में पड़ी हुई सुच्चे मोतियों की माला को एक ओर अंगूठे में फांस कर दूसरी ओर तर्जनी ऐसे तान दी थी मानो वह रेणु पर सवालों की बौछार नहीं, नवनीतमृदु मीठी गोलियों का वार कर रही हो. उनसे पूछा था उसने—"आखिर ऐसे लेखन से क्या लाभ जिसके शब्दों के अर्थ किसी डिक्शनरी में ढूंढे भी न मिलते हों, या जिन्हें समझने के पहले फुटनोट पर ध्यान आकृष्ट करना ज़रूरी हो जाये?"

बहुत इतमीनान से मुस्कराते हुए किसी सधे हुए लठ्ठबाज की तरह जवाब दिया था उन्होंने—"तो कौन कहता है कि आप मेरी रचनाएं बांचें ही. बिना पढ़े भी तो उन्हें कूड़े के ढेर में फेंका जा सकता है."

अपने आलोचकों को रेणु ने हरदम ऐसा ही उत्तर दिया था. न इससे मधुर, न इससे तीखा. अधिक बोलने से मूर्खता ही मुखरित होती है. वह कहा करते थे, "मुझे कुछ आता-जाता नहीं. लोग बार-बार उन्हीं सवालों को दुहराते हैं और जब मैं बोलता हूं तो मेरी मूर्खता झलक दिखाने से बाज नहीं आती."

गांवगीरी में बाबूगीरी

बंबई में हर कदम पर रेणु को किसी रहनुमा की जरूरत पड़ जाया करती थी. वह जब वहां की सड़कों पर चलते थे, तो ऐसा लगता था जैसे यह सड़कें सचमुच अजगर बनी बैठी हैं जिसके सैकड़ों मुंह हैं और हजारों दांत. बहुत संभल-संभल कर चलना पड़ता था रेणु को इन सड़कों पर. यदि वह किसी चौराहे पर ठिठक गये तो सौ-पचास बसों, कारों और टैक्सियों को बिना रास्ता दिखाये वह आगे नहीं बढ़ सकते थे.

उस तरह की किसी भी राह पर रेणु के साथ जब कभी मैंने अपने कदम रखे, तो हमेशा ही मुझे ऐसा लगता था जैसे बंबई में कभी नहीं जी पायेंगे रेणु. जिनकी व्यथा-कथा लिखकर रेणु ने नाम कमाया था, उनसे वह किसी भी माने में एक कदम भी आगे नहीं बढ़ा पाये थे तब तक कहने को वह भले ही बंबई, दिल्ली और कलकत्ता कीसैर कर लेते हों, लेकिन उनका गंवईपन कभी उन्हें चुस्त होने की इजाजत नहीं दे पाया था. और इस गंवईपन के कारण ही रेणु की रुचियां और प्रकृति को समझ पाना आसान भी नहीं हो पाया किसी के लिए.

बिहार के उन गर्द भरे गांवों में रेणु ने न केवल अपना जीवन ही बिताया था, वहां नेतागीरी भी की थी उन्होंने. और वह नेतागीरी भी समाजवादी दल की, जिसका नाम सुनते ही लगता है जैसे कीचड़ से भरे पथ पर कोई धूलधूसरित व्यक्ति अकेला ही जा रहा हो कहीं. यही सब सुनकर सरदारजी ने उनके आने-जाने की व्यवस्था लोकल ट्रेन से कर दी थी. गांव का नेता यदि बैलगाड़ी छोड़ दे, तो रेलगाड़ी की सवारी तो कर ही लेगा. लेकिन उस दिन बंबई की उस लोकल ट्रेन की जो आकुल-व्याकुल प्रतीक्षा करनी पड़ी थी उन्हें, और जिस हल्के गर्द-गुबार का सामना करना पड़ गया था उन्हें फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे में भी. मात्र उस कारण ही उनका दम घुटने लगा था जैसे. रास्ते भर, इत्र से भरा रूमाल, उनके नाक की सवारी करता ही रहा.

यों रेणु की गांवगीरी में एक खास किस्म की बाबूगीरी भी थी और वह बाबूगीरी इतनी अंधी थी कि अपने फैशन के आगे बड़ों-बड़ों को भी कुछ नहीं समझती थी. बहुत ही साधारण ढंग से कुरता-पाजामा पहना करते थे फणीश्वरनाथ रेणु. लेकिन

आपातकाल : तन मन धन से आंदोलनकारी "मैं आंदोलन में नहीं, आंदोलन मुझमें है"

कुरते पर हल्का-सा दाग या पतली-सी सिकुड़न भी उनको गवारा नहीं हो पाती थी. और उस दिन पहनने के लिए जो नया कुरता-पाजामा निकाला था उन्होंने, उस पर नजर पड़ते ही वह बुलबुला उठे थे. धोबी ने पाजामे की तरह नहीं, पतलून की तरह इस्तरी फेर दी थी. बंबई का वो फैशन उन्हें बहुत देर तक सालता रह गया था.

मैं सोचता था, जिस फ़िल्मी दुनिया ने रेणु की कहानियां खरीदी हैं, क्या वह खुद रेणु को ही नहीं खरीद सकती! बहुत पैसा है इस फ़िल्मी दुनिया के पास. अगर फंसा लिया इस मायानगरी ने अपने मायाजाल में कहीं रेणु को, तो उस रेणु का क्या होगा जो सड़क पर ठिठक जाते हैं, रेल में बौखला उठते हैं. एकदम

छुटपुट-प्रसंग

सरकार क्षमा मांगे

आपात्काल का समय था. पुलिस ने ग़लत तरीके से उन्हें गिरफ्तार कर लिया और वे पूर्णिया जेल लाये गये. कुछ दिनों बाद सरकार ने घोषणा की कि उन्हें जमानत पर छोड़ दिया जाये. रेणु ने अपनी जमानत स्वयं नामंजूर कर दी और इस स्वाभिमानी साहित्यकार ने जेल से ही अपना बयान दिया, "मेरी गिरफ्तारी ग़लत ढंग से हुई है. सरकार को चाहिये कि वह अपनी ग़लती के लिए मुझसे क्षमा मांगे और बाइज्जत रिहा करे." रेणु का यह वक्तव्य रेडियो से प्रसारित किया गया था. तत्कालीन सरकार को ऐसा ही करना पड़ा. □

रेणु : खेत खलिहान में चौकसी और चिंतन

राजनेता का दिल

लोकनायक श्री जयप्रकाशनारायण के आह्वान पर रेणु आंदोलन से जुड़ गये. जे. पी. की सभाओं में रेणु चुपचाप बैठे होते. खुद बहुत कम बोला करते. नुक्कड़ सभाओं में जाते. एक मंच से रेणु ने राजनेता के संबंध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये थे: "राजनेताओं की चमड़ी बहुत मोटी होती है बिल्कुल हाथी की चमड़ी के समान, जिस पर संवेदना का कोई रंग नहीं होता. अगर मुझे किसी राजनेता की तस्वीर स्केच करने को दी जाये तो मैं उसके दिल की जगह छोटा-सा तिल बना दूंगा." □

यही सवाल पूछा था मैंने रेणु से भी उस शाम, खार-पाली रोड के उस सुनसान रास्ते पर चलते हुए. लेकिन उन्होंने इस सवाल को किंचित गंभीरता से नहीं लिया था, गोकि उनकी दो कृतियां बिक चुकी थीं तब तक वहां और तीसरी का ग्राहक मैं खुद ही जुटा लाने के फेर में लगा हुआ था उन दिनों. एक अभिनेत्री भी उनसे मिलने के लिए व्याकुल थी, और रेणु हर बार उसके यहां जाने से रह जाते थे. रेणु का प्रचार फ़िल्मलोक में आंधी की तरह आया था, सो कई निर्माता भी उनके विषय में कुछ जानने-सुनने को आतुर थे. मगर वे सब घटनाएं उन्हें कुछ भी प्रभावित नहीं कर पायी थीं. चलते-चलते कहा था उन्होंने—"भाई, मैं बंबई आ सकता हूं सिर्फ़ व्यापारी की तरह, कभी-कभी. लेकिन जीना, रहना मेरे बस की बात नहीं होगी. चौबीस घंटों के चार घंटे भी तो मेरा मन नहीं लग पाता यहां, अगर चार घंटे भी कहीं रम पाता तो जमने की बात सोची जा सकती थी."

और सचमुच वहां जमने की कोई बात सोचे बिना ही वह वहां से चले भी गये. कच्चे व्यवसायी की तरह अपनी एक कहानी और एक उपन्यास ही बेच पाये थे वह. जिस अभिनेत्री से उन्होंने मुलाकात नहीं की, उससे फिर कभी मिले भी नहीं. उसे कहानी नहीं दी, संवाद भर दे दिया उसके नाम—"मैंने तुम्हें पसंद किया है, तुम्हारी फिल्मों को देखा भी है."

लेकिन फिर ही कुछ दिनों से रेणु का फ़िल्मलोक में आना-जाना शुरू हो गया था. वैसे अपनी उन छोटी यात्राओं में बंबई की उमस, यहां की भाग-दौड़, यहां का कोलाहल ही देख पाये थे वह. अच्छा हुआ, उन्होंने बंबई को और भी गहरी नजर से नहीं देखा. वरना पाली-हिल पर किसी गांव से भी ज्यादा सन्नाटा रहा करता है, और मोटर गाड़ियां ऐसी निकल आयी हैं जिन्हें वातानुकूल बना कर मनचाही शांति सहज ही पायी जा सकती है. अगर ये चीजें रेणु को मोह पातीं तो उनका गंवईपना तो जाता ही, दुनिया से एक ऐसी बाबूगीरी भी खत्म हो जाती, जो काठ के तख्ते पर नरम गद्दा डाल कर मस्ती की करवटें लेती है और उसी में मग्न रहा करती है...!

□

रेणु : कुछ अनजानी-अजनबी बातें

▣ कन्हैयालाल किंगार

रेणुजी तन से उतने स्वस्थ नहीं थे किंतु दिल से जिंदादिल थे. और रेणुजी, उनकी पत्नी लतिकाजी के शब्दों में .. 'शुभ-अशुभ बहुत मानते थे कदम-कदम पर.' उनकी जन्म तिथि थी—

4—3—1921.

4+3+1+9+2+1=20

जन्म वर्ष 1921+20=1941.

1941+1+9+4+1=1956

1956+1+9+5+6=1977 स्वर्गवास

पति-पत्नी दोनों वृहस्पतिवार को अच्छा नहीं समझते थे. अंक ज्योतिष में वृहस्पतिवार का अंक तीन है और अंक तीन रेणु जी को आमतौर पर प्रतिकूल प्रभाव देता रहा. ऑपरेशन के लिए वे वृहस्पतिवार को भर्ती हुए थे. वृहस्पतिवार का अंक है : 3

जन्म माह मार्च—3.

स्वर्गवास 11-4-1977—1+1+4+1+9+7+7=30

3+0=3

दूसरे दिन 12 तारीख को अखबार और आकाशवाणी के माध्यम से लोगों को यह अशुभ समाचार मिला. 1+2=3.

आयु के 57 वें वर्ष में प्रवेश करते ही वे स्वर्गवासी हो गये, 5+7=12...1+2=3.

1968 में दिसंबर में बीमार हुए थे. 1976 में दिसंबर में बीमार होकर अस्पताल में भर्ती हुए. दिसंबर का अंक: 1+2=3.

के.एल. वार्ड के 21 नंबर बेड पर स्वर्गवासी हुए: 2+1=3

दिसंबर 76 में अस्पताल में भर्ती होकर 13 फरवरी 1977 को लौटे लेकिन अस्पताल फिर बुला रहा था क्योंकि 1+3+2+1+9+7+7=30.

3+0=3.

1974 में वे जे. पी. के आंदोलन में शामिल हुए और सरकारी अलंकरण पद्मश्री वापस कर दिया: 1974=21=3. 1974 में पूर्णिया जेल में 74 दिन बिताने के बाद 21 अक्तूबर को वे लौटे: 21=3.

अंक छः का प्रभाव

पति-पत्नी का तैंतीस वर्षों का भौतिक स्मृति-संबंध समाप्त हो गया: 33=6.

विवाह: 5-2-1952=24=6.

1968 में बीमार: 1968=24=6.

1977 में जान लेवा बीमारी: 1977=24=6.

24 तारीख (मार्च 1977) को ऑपरेशन के लिए भरती हुए: 24=6.

24 जून की रात को इनके घर से चोरी हुई थी: 24=6. अस्पताल में गये अंतिम यात्रा की तैयारी के लिए 25-2-1977=33=6. 33 वर्ष की उम्र में सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'मैला आंचल' छपा: 33=6. अंक 3 और 6 अंक का 9 से संबंध है और वैसे भी अंक चार से प्रभावित व्यक्तियों के लिए अंक नौ आमतौर पर अच्छा नहीं रहता है.

1944 में राज्य लक्ष्मा के बंदी मरीज थे: 1944=18=9.

1 दिसंबर 1976 को गंभीर रूप से घायल होकर घर लौटे और सीधे अस्पताल में दाखिल हुए: 1-12-1976=27=9 दिन मंगलवार का था, मंगल का अंक है—9.

नौ तारीख (अगस्त 1974) को गिरफ्तार किये गये=9, जे. पी. के नेतृत्व में विशाल जुलूस में 4 नवंबर 1974 को रेणु घायल हो गये थे: 4-11-1974=27=9. रेणु का स्वर्गवास हुआ था साढ़े नौ बजे, रात्रि को.

भाग्यांक २

जन्म 4-3-1921=20=2.

स्वर्गवास की तारीख 11=2

विवाह का महीना फरवरी=2.

उम्र पायी 56 वर्ष=11=2

पहली कहानी 'बर बाबा' प्रकाशित 1946 में=20=2

गिरफ्तार 9-8-1974=38=11=2

पूर्णिया जेल में 74 दिन रहे 74=11=2

उच्च न्यायालय ने इनकी गिरफ्तारी को अवैध करार दिया, 16-10-1974=29=11=2

18-11-1974 को इन्होंने सरकारी अलंकरण लौटाया था. 4 नवंबर 1974 को बुरी तरह घायल हुए थे और 11 अप्रैल 1977 को उन्होंने महाप्रयाण किया. तीनों तारीखों को दिन था सोमवार. सोमवार का अंक है दो.

चार अंक से प्रभावित व्यक्ति भावुकतामय किंतु रचनात्मक, विघ्न-बाधाओं भरा किंतु संघर्षमय जीवन जीते हैं. ऊपर से सबका व्यवहार अच्छा किंतु पीठ पीछे इनके अशुभचिंतक भी होते हैं. अंक चार से प्रभावित रेणु में सही मायने में जीवन झलकता है. सुख-दुख आशा-निराशा, विश्वास-गलतफहमी, लीक से अलग ढंग की कार्य-प्रणाली व रचना, लगातार असंतुष्ट होने पर व्यवस्था के प्रति विद्रोह... जो कहिये, अंक चार के अध्याय में 'रेणु' जी चार चांद लगा गये. □

● नॉवल्टी क्लाथ स्टोर्स, मेन रोड, रांची (बिहार)

रेणुजी का गांव—हिंगना-औराही. दरवाजे के बायें छोर पर कचनार का एक पुराना दरख्त है, गोबरछत्ते की शक्ल का. वृत्ताकर घनी परछाईं पर बांस की खपच्चियों की जाफरी छाया-चित्र की मानिंद आकर सट गयी है. दो-तीन ग्रामीण शिल्प की कुर्सियां हैं. रेणुजी एक कुर्सी पर धोती की लुंगी पहने बैठे हैं. बैठने का ढंग उनका अपना है—घुटने मोड़े हुए, कुछ-कुछ वज्रासन जैसा. बिखरे गेसुओं को लापरवाही से जूड़े की तरह बांध लिया गया है, जिस पर बायां अभ्यस्त हाथ अपने आप पहुंचता रहता है.

प्रसंग के लिए विषय की कमी नहीं है.

टाइम्स ऑफ इंडिया में डिनर. फ्रेंच-डिश और एक-एक चीज का विश्लेषण. कौन-सा सूप कैसे बनता है. विश्वास नहीं होता कि अभी-अभी यह व्यक्ति 'अभावट' के स्वाद-वैविध्य की चर्चा कर रहा था. बता रहा था कि मक्के के आटे से कितनी तरह की रोटियां कैसे बनायी जा सकती हैं.

क्या नाम है?... नछत्तर माली?

पड़ोस के गांव पेरवाहा (परती परिकथा का परानपुर) के मास्टर साहब. किसी गांव के किसी आदमी का स्मरणात्मक रेखा-चित्र जब वे अपनी क्षेत्रीय बोली में प्रस्तुत करने लगते, हम लोग 'मैला-आंचल', 'परती परिकथा' या उनकी

नये लेखकों के कथा बीज

परिचय के दायरे में आये एक-एक व्यक्ति को वे एक्स-रे की दृष्टि से देख लेते थे. अगर आप रेणुजी के संस्मरण कहीं सुना रहे हैं, तो ऐसा मत समझियेगा कि रेणुजी आपके संस्मरण कहीं नहीं सुनायेंगे! उपेक्षित वर्ग के अज्ञात व्यक्तियों के साथ हिंदी और बंगला के कितने ही साहित्यकार और साहित्येत्तर व्यक्तियों के संस्मरण वह सुनाते थे.

नये लेखकों को तो न जाने कितने कथा-बीज मिल जाते थे उनसे. किसी घटना या पात्र की प्रस्तुति की उनकी शैली कथात्मक होती थी–किस्सागो जैसी.

▣ रेणु: बातचीत के कथा-प्रसंग

चल, उधर गाड़ी की तरफ... मुड़-मुड़कर क्या देखता है?

▣ रामधारी सिंह दिवाकर

बात सामने के कचनार से चली, तो तंत्र-साधना में इस फूल के उपयोग से लेकर पकौड़ी बनने तक की बात होने लगी. फिर अज्ञेयजी ने पटना के पुराने सचिवालय के सामने उनके साथ इसी प्रजाति का एक दरख्त देखा था.. जिसका सत्यापन उन्हें काठमांडू में मिला.... बात औद्भिदी-चर्चा तक पहुंच गयी. इस चर्चा के साथ अज्ञेय का अंतर्जगत और अनुद्घाटित पक्षों पर एक मर्मी की टिप्पणियां... टेलीप्रिंटर की तरह अनुभव के आकाश से आते शब्द अधरों पर लिपिबद्ध हो रहे हैं... ध्वनियां श्रव्य का दृश्य में अनुवाद करने लगती हैं.

टाइम्स ऑफ इंडिया में डिनर

गांव का कृषि-वातावरण... अस्सी-नब्बे प्रतिशत गरीब लोग. खेती-बाड़ी बातचीत और चिंता का केंद्र बन गयी है. गाहे-बगाहे रेणुजी किसी खेत में 'जन' लगाने की बात करते हैं और फिर वहीं लौट आते हैं—छूटे प्रसंग-सूत्रों को उंगलियों से टटोलते हुए-से. कमलेश्वर, धर्मवीर भारती... अरविंद कुमार द्वारा

कहानियों के किसी-न-किसी पात्र के साथ उसकी संगत बैठा लेते थे. 'परती परिकथा' का चलित्तर कर्मकार! वास्तविक पात्र नक्षत्र मालाकार. एक बैठक में रेणुजी बताने लगे थे कि किस प्रकार गठीले शरीर का एक अनपढ़ युवक सोस्लिस्ट पार्टी की सदस्यता के लिए पार्टी-दफ्तर में आया था. लोहियाजी ने पूछा था—"क्या नाम है?"—"नछत्तर माली." "अजी कहो न, नक्षत्र मालाकार." ... नछत्तर माली का गंवारू नाम परिनिष्ठित शब्दावली में किस तरह रूपांतरित हुआ और किस तरह उस युवक की जीवन-स्थितियां असमान वितरण-व्यवस्था से क्षुब्ध होती हुई क्रमशः वक्र रेखाओं में उलझती चली गयीं! किस तरह समाजवादी व्यवस्था की उग्र चेतना में वह आतंकवादी बना—इस जीवित इतिहास को एक बार रेणुजी सुनाने लगे थे, तब लगा था, 'परती परिकथा' के चलित्तर कर्मकार की छाया के साथ एक अलग चरित्र जीवित हो उठा है. जो किसी भी वृहत्तर उपन्यास का नायक बन सकता है.

संवादों को वे ज्यों-का-त्यों पूरे इंटोनेशन में रखते थे. बीच-बीच में एं-एं का स्वर-संलाप, जो रिक्तियों को संयोजकता प्रदान करता था—फिलर टोन की तरह. पूरा संदर्भ एक लयात्मकता में बंध जाता था. किसी-किसी शब्द के उच्चारण पर वे अक्सर बहुत हल्के से तुतलाने लगते थे. एक ही अक्षर दो-तीन बार ओठों पर लगातार टंकित हो जाता और तब उनके लहजे को अजीब-सी खूबसूरती मिल जाती थी.

रसूलन बाई का स्वर

रेणुजी कहते थे—रसूलनबाई के ठुमरी-गायन में एक खास बात यह थी कि उनका स्वर एक खास आरोह पर पहुंच कर थोड़ा फट जाता था. गायन में स्वर की यह विकृति दोष मानी जाती है. लेकिन आरोह पर पहुंचे रसूलनबाई के उस फटे स्वर में ऐसा अकथ्य आकर्षण था कि ठुमरी और गजल की अनेक गायिकाएं अपने आरोहित स्वर को उसी तरह फाड़ने का प्रयास करती थीं. लेकिन वह खासियत किसी को नहीं

रेणु—
एक विशिष्ट मुद्रा

मिल पायी. . . रेणुजी का कभी-कभी थोड़ा-सा तुतला जाना इसी प्रकार का वरेण्य बाल-दोष था.

तब आपत्काल की अवधि का मध्याह्न था. वे पेट की अपनी पुरानी बीमारी लेकर गांव लौट आये थे. मैं कुछ साथियों के साथ उनसे मिलने गया था. चार-पांच घंटे की बैठक के बाद उपसंहार का मोड़ देते हुए उन्होंने मुझसे पूछा था—"क्या लिखा है इधर?" मैंने अपनी 'विदा दृष्टि' शीर्षक एक कहानी उन्हें सुनायी थी. वे ध्यानस्थ सुनते रहे थे. समाप्ति पर ग़मगीन होकर बोले, "विदाई क्लेश देती है. मैं इसीलिए किसी आत्मीय को विदा करने नहीं जाता. बड़ा अजीब लगता है. लौटो तो एकदम खाली-खाली, उदास-उदास जैसे कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण छोड़ आये हों. . ." वे दरवाज़े के बाहर खुले क्षितिज की ओर देखने लगे थे. मैं सोचता रहा था, अपने भीतर वे किसी विदा-दृश्य को देखने लगे हैं, जिसने उन्हें कभी जी भर रुलाया होगा. 'तीसरी कसम' का हीरामन स्टेशन के बाहर बैलों को ज़ोर से पीटता है—"चल, उधर गाड़ी की तरफ. . . मुड़-मुड़ कर क्या देखता है. . . ?"

उनके महायात्रा पर चले जाने के बाद विदा-दृश्य के उन क्षणों पर सोचता हूं तो लगता है, यह संवेदनशील कथाकार, जिसमें किसी को विदा करने की दृढ़ता नहीं थी, जो ऐसे आपादान क्षणों की कल्पना से आंखें मूंदे यादों की गहरायी में खो जाता था, अपने ही चिर-विछोह के दृश्य को दो हफ्तों तक लगातार कैसे देखता रहा होगा? □

● 1, टीचर्स क्वार्टरर्स, किलाघाट, शुभंकरपुर, दरभंगा-6 (बिहार)

फारबिसगंज से 'सिमराहा स्टेशन से औराही-हिंगना की दूरी कुल डेढ़ घंटे की ही है! पर यह दूरी सिमटकर मानो कुछ मिनटों की हो जाती थी क्योंकि उनके जीवित होते हम उल्लासमयी यात्रा करते थे. रास्ते भर की बातचीत, हंसी-मजाक और आपसी चर्चाओं के बीच समय कितना तेज़ी से निकल जाया करता था!

रेणुजी हमसे पूछा करते, "अखनिए गाड़ी सं अइलों की?" (अभी ही गाड़ी से आये क्या?)

"हं, बस एकरे सं आ रहल छी" (हां, बस इसी से आ रहे हैं) उत्तर में जयशंकर सहज भाव से पूरा वाक्य कह जाते. तभी बजनाथ बोलते, "विचार त भोर का सं आवे के रहे, मुदा उठे में तीन बिलंब भय गेल." (विचार तो सुबह आने का था किंतु उठने में देर हो गयी)

और खिलखिलाते हुए रेणु ज़ोर से हंस पड़ते, "हं, तोरे लोकनिक ठीक छै. जब मन भेल तखने उठभग, इहां त एतेक सबेरे उठे पड़ैतछैक कि कहल जाय. गांव न छे. देर सं उठला पर गांव के लोग आखिर कि सोचते?" (हां, तुम्हीं लोगों का ठीक है. जब मन हुआ उठ गये. यहां तो सुबह ही जग जाना होता है. गांव है न! देर से उठने पर गांव के लोग क्या कहेंगे?)

और फिर हम कुर्सी पर बैठ जाते. रेणुजी भी हमारे समक्ष बहुत मामूली टूटी-फूटी कुर्सी पर बिराजते. फिर कहकहों, ठहाकों का अंतहीन सिलसिला शुरू हो जाता. रेणु हमें अपने रचनात्मक संसार में ले जाते और हम उस दुनिया की सैर करते.

रेणु जी की चौपाल

आज भी हम रेणु-गांव जा रहे हैं लेकिन फारबिसगंज से सिमराहा आते-आते लगता है यह दूरी अब बढ़ गयी है. रेणु-गांव तक जाने वाली लंबी टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडी अपनी बाहों का खालीपन लिये जाने किस दबाव की अनुभूति कराती है! हमें नहीं मालूम. लेकिन हमें इतना मालूम है कि यह असहाय-सी हो गयी है. कि हमारे पैरों में मनों पत्थर बांध दिये गये हैं, जो चलने के काबिल नहीं रहे. किंतु हमें जाना है. रेणु-पुण्य-तिथि पर हम रेणु-गांव जाते हैं. लोगों से मिलने, उनका हाल-चाल लेने. रेणु के घर वालों से बात-चीत करने . . . . हरे-भरे खेतों से गुज़रती सांय-सांय करती शीतल हवाएं. . . गेहूं की बालियों के बीच गुज़रती हैं तो एक अजब खुशबू उड़ती है. लेकिन अब, सब कुछ फीका-फीका लगता है. खेत, खलिहान-गाछ-वृक्ष ठूंठे पड़े हैं. रेणुजी के साथ जिनके संग हमने अपनी असंख्य स्मृतियां जोड़ी थीं, वे अपरिचित बन गये सबके सब. खेतों की लहलहाती फसलें, जो झूम तो रही हैं किंतु उनकी मूक वेदना को अब समझेगा कौन? और यह कल-कल करती कोसी की शिशु नहर? इसका क्रंदन भीतर तक बींधता है मन को. इस नहर के किनारे जाने कितनी बार रेणुजी ने अपनी चौपाल जमायी थी.

हम रेणु के घर 'प्रवेश-द्वार' पर खड़े हैं. मेहराब पर लगा गुलमोहर उदास, सुनसान. . . . सदा से मुस्कराते इस गुल-मोहर को पता नहीं आज क्या हो गया!

दरवाज़े पर खड़ी टप्पर गाड़ी. खाली. अब 'हीरामन' कभी नहीं बैठेगा इस पर. चुपचाप खड़े दो बैल. रेणु के प्यार-भरे सहलाते हाथों का स्पर्श इनकी पीठ पर अब क्या कभी हो सकेगा?

आंगन में प्रवेश करते ही कबूतरों का दड़बा. . . दर्जनों कबूतर. कभी रेणु सुबह होते ही चावल के दाने उनके आगे छींट दिया करते थे. वे उनके कंधों पर बैठ जाते थे. . . . रेणु उनके साथ घंटों खेला करते. रेणु की गंध की गहरी पहचान है इन्हें. मिट्टी का तन मिट्टी में मिल गया मगर सुगंध तो बरकरार है अभी.

और फूस का यह घर चुप्पी की हद से गुज़र रहा है. अभी कुछ समय पहले ही तो दो लड़कियों की शादी में यह घर दुल्हन की तरह सजा-सवंरा था. पर आज . . . 'सजनवा बैरी हो गये हमार!' ▣

सजनवा बैरी हो गये हमार !

नागार्जुन और रेणु : परस्पर 'पंक-तिलक' करते हुए,
छाया : जयशंकर

● विजय अग्रवाल रजनीश के सौजन्य से.

रेणु का घरः रेण का गांव

फूस का मकान. आंगन में कबूतर का दड़बा. मकान के पश्चिम बांस-बाड़ी. उत्तर की ओर झुग्गी-झोंपड़ियां और तनिक आगे जाकर आम के बगीचे. अमराई. अमराई जहां समाप्त होती है, वहीं से शस्य-श्यामला धरती की हरीतिमा शुरू होती है. फिर आती है कोसी की नहर. यहां रेणु के खेत हैं.

दरवाजे पर बहुत पुराना कुआं, जिसकी दीवारों पर चित्रकारी की हुई है—मोर-मयूर के चित्र, भित्ती चित्र. दालान में लगभग सौ वर्ष पुराना काठ का संदूक, जिसमें बड़े-बड़े पहिये लगे हैं. मिट्टी से लिपी-पुती दीवार पर भी चित्र . . . भित्ती चित्र. 'भित्ती चित्र की मयूरी' कहानी की प्रेरणा रेणु को यहीं से हुई थी.

घर : जहां रेणु रहते थे . . . रहते रहेंगे . . .

● उदयशंकर

घर के आगे—प्रवेश द्वार. बांस की टट्टी से बना मेहराब. मेहराब के सामने गुलमोहर के गाछ, मेहराब से सटे कचनार के दो गाछ और पास ही बहुत पुराना एक नारियल का पेड़ है. इससे सटा बथान है, जहां माल-मवेशी रहते हैं. दरवाजे पर ही 'हीरामन' की टप्पर गाड़ी खुलती है. बगल में बांस के दो बड़े खूंटे खड़े हैं, जिनके सहारे धान की दौनी की जाती है.

रेणु का गांव

पूरा नाम है—हिंगना औराही. पूर्णिया जिले का यह गांव उपेक्षित-सा आज भी फटेहाल जिंदगी जी रहा है. इस गांव में कोई घर सलीके का नहीं है जिसका वर्णन किया जाये. झोंपड़-पट्टियों की लंबी तादाद. लोगों के दरवाजे पर सुपाड़ी-नारियल के गाछ मिलेंगे. छप्पर के नीचे एक कोने में माल-मवेशियों के बांधने की जगह. घर के बड़े-बूढ़ों के लिए दरवाजे पर बना पर्ण कुटीर, जहां दिन भर खेतों में काम करके हारे-थके लोग अपनी-अपनी राम कहानी कहते नज़र आते हैं. विज्ञान के नये-नये आविष्कारों के बावजूद गांव में रोशनी नहीं है.

गांव का वातावरण गंवई राजनीति का शिकार है जबकि लोगों की जीविका का मूल स्त्रोत एकमात्र कृषि है. कोई भी छोटा-मोटा एक ग्रामीण-उद्योग तक नहीं है जिसमें गांव के नौजवान व्यस्त हो सकें. ऐसी छोटी-छोटी बातें जिनका समाधान आपस में बैठकर किया जा सकता है, व्यर्थ ही लड़ाई-झगड़े से लेकर मुकदमों तक पहुंच जाती हैं और बात-बात पर प्रायः झूठे मुकदमे खड़े होते रहते हैं. शिक्षित व्यक्ति प्रायः ना-समान हैं.

इन दिनों लोगों की 'बैठकी' चलती रहती है जिसमें कीर्तन, रामायण, आल्हा की धुन में गांजा का दम, एक हाथ से दूसरे हाथ तक पहुंचता रहता है. ग्रामीण युवा-वर्ग गाछ के नीचे या दालान के बाहर ताश खेलकर और बीड़ियां फूंककर दिन काटता है.

शहर पर आश्रित गांव

गांव से सिमराहा स्टेशन तीन किलोमीटर परे बसा है. दुनिया की रंगीनियों से दूर और कटे-छंटे बेखबर गांव के लोगों को अपनी ज़िंदगी की जहरीली मुसीबतें वक्त के किनारे खड़ा कर देती हैं. एक ही साथ यहां के लोग अनेक प्रकार की ज़िल्लतें, कष्ट, दुख, अभाव और परेशानियां भोगने को मजबूर हैं. यहां एक छोटा-सा अस्पताल तक नहीं है. किसी के बीमार होने पर ओझा-गुनी की खुशामद करनी पड़ती है. या ग्रामीण जड़ी-बूटियां उपयोग में लायी जाती हैं.

यहां फूल के समान छोटे-छोटे बच्चे शिक्षा के अभाव में दिन भर गांव की गलियों में कौड़ियां खेलते हैं. स्कूल के नाम पर फटे-पुराने झोंपड़ों में एक यतीम स्कूल, टाट के झरोखे से, अपना बिगड़ता रूप दिखाता रहता है.

गांव पूरी तरह शहर पर आश्रित है. ज़रूरत की हर छोटी-बड़ी चीज़ शहर से लानी पड़ती है—बीड़ी तक. शहर—फारबिसगंज, जो सिमराहा से दस कि. मी. दूर पड़ता है.

गांव के कार्यक्रम

अपने इस 'प्यारे गांव' में रेणु महानगरों की अशांति दूर करने आते थे. गांव में वे गांव वालों का होकर जीते थे. लोगों के सुख-दुख के सहभोक्ता होते थे.

गांव की पंचायतें, शादी-विवाह, श्राद्ध-भोज जैसे कार्यक्रमों में वे पूरी दिलचस्पी लेते थे. धान की रोपनी के समय वे खुद धान रोपा करते थे. पंक-तिलक, गांव की माटी, लोग, पशु-पक्षी, खेत-खलिहान, वनस्पति से उनका निजी और आत्मीय संबंध था.

अब तो बस यादें शेष हैं! □

प्रस्तुति : अमरेंद्र मिश्र

खाली स्पूल-सा फ्लैट

▣ गीता पुष्प शॉ

चारों ओर पानी ही पानी है. बाढ़ आयी हुई है. हमें काम से आरा आना था. अब पटना लौट रहे हैं. पुष्पजी और मैं. ट्रेन सरकने लगती है. जल्दी से एक औरत हमारे कंपार्टमेंट में घुसती है. सीधी-सादी. तांत की पाड़ वाली साड़ी पहने हुए. हाथ में एक झोला. चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान. वह बैठ जाती है. हम पानी देख रहे हैं. सारी बातें बाढ़ से संबंधित हो रही हैं. आज स्कूल, कॉलिज सब बंद हो गये हैं. वह औरत मूंगफली खरीदती है. हमें भी खिलाती है. पता चलता है, यहीं आरा में पढ़ाती है. पटना-आरा 'डेली-पेसिंजरी' करती है. पटना आता है. हम उतरते हैं. मैं कहती हूं, "अच्छा फिर कभी मिलेंगे. वैसे, आपके पति क्या करते हैं?" वह चलते-चलते कहती है, "मेरा आदमी कहानी लिखता है." और हम दो दिशाओं में चल देते हैं.

हम पटना नये-नये आये थे. साहित्यकारों से परिचित थे पर उनके घर नहीं जानते थे. रेणुजी कहते हैं, "राजेंद्रनगर आइये, मेरे फ्लैट पर. कल शाम रखिये." दूसरे दिन हम जाते हैं. सीढ़ियां चढ़ते हैं. एक छोटी-सी तख्ती लगी है—फणीश्वरनाथ रेणु. कुंडी खटखटाते हैं. दरवाजा खुलता है. सामने एक औरत खड़ी है. सीधी-सादी. तांत की पाड़ वाली साड़ी में. चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान. मैं ठिठक जाती हूं. मेरे आगे वही चेहरा घूम जाता है—'मेरा आदमी कहानी लिखता है.' वे कहती हैं, "भीतर आइये न! बैठिए. रेणुजी बाहर गये हैं, अभी आ जायेंगे." हमें उनसे मिलकर खूब आश्चर्य हो रहा है. खुशी भी. वे हमें ड्राइंगरूम में बिठाती हैं.

रेणुजी नहीं हैं. कहीं बाहर गये हुए हैं. हम मन ही मन कुढ़ते हैं. हमें बुलाकर खुद न जाने कहां गायब हो गये. वह औरत (. . .अब हम उनका नाम जान लेते हैं—लतिका दी) हमें मूढ़ी (मुरमुरे) खिलाती हैं. चाय पिलाती हैं. कुछ देर हम ड्राइंगरूम में लगी तस्वीरें देखते हैं. रेणुजी, शैलेंद्रजी के साथ. . .कुछ और तस्वीरें. . . कुछ पत्रिकाएं उलटते हैं, फिर घर चले आते हैं.

घर पहुंचकर बहुत बेमन से कपड़े बदल लेते हैं. तभी घंटी बजती है. देखते हैं, सामने रेणुजी खड़े हैं, "अरे आप लोग आकर चले गये! बात यह थी कि मैं लतिका को बताना भूल गया था. आपके आने के कुछ ही देर पहले मैं बाजार निकल गया था. ढेर सारे फल, बरफ़, शरबत वगैरह लेकर लौटा तो पता चला कि आप लोग आकर चले गये. चलिये, आप लोगों को लेने आया हूं." मैंने सोचा, ये लेखक लोग पत्नियों को परेशान करने के लिए ही धरती पर अवतरित हुए हैं क्या? क्या सभी लेखक एक जैसे भुलक्कड़ होते हैं? हमारे घर एक बार इतवार को ड्राइंगरूम में सात-आठ लोग आकर बैठ गये. जब दो बज गये, तो हम अंदर बैठे इंतजार करने लगे कि ये लोग उठें, तो हम खाना खायें. तभी पुष्पजी भीतर आकर बोले, "गीता, खाना लगाओ. सबको कितनी देर बिठाओगी? इन्हें आज खाने पर बुलाया था, तुमसे कहा नहीं था क्या?" हमने सिर पीट लिया. अरे, एक-दो एक्स्ट्रा होते तो कोई बात थी—पूरे सात लोग थे. खैर, यह तो इनकी पुरानी आदत है. जल्दी-जल्दी स्टोव, गैस सभी कुछ एक साथ जलाकर खाना बनाया. फिर चेहरे पर एक लंबी मुस्कान खींच कर सबको प्रेम से खिलाया.

मेरे चेहरे की सुंदरता का राज़ है. . .

एक बार पुष्पजी ने ही सुझाव दिया था कि महिलाओं की केश-सज्जा पर बहुत कुछ लिखा जा चुका हैं, होली-विशेषांक के लिए रेणुजी से उनकी केशसज्जा पर इंटरव्यू ले लो.

यह इंटरव्यू बहुत मजेदार रहा. मैंने रेणुजी से पूछा था, "आप कितने दिनों में बाल धोते हैं?"

रेणु और गीता : सिंगार-पटार की बतकही!

"सप्ताह में एक बार इतवार को. . .क्योंकि उस दिन नल में पानी देर तक आता है और बाल सुखाने की भी फुरसत रहती है."

"रेणुजी, वैसे तो सभी मर्द जिस साबुन से नहाते हैं, उसी से सिर भी धो लेते हैं. आप कौन-सा साबुन इस्तेमाल करते हैं?"

"गीताजी, वैसे मेरे चेहरे की सुंदरता का राज़ है—मार्गो सोप. मगर सिर में मैं साबुन-वाबुन नहीं लगाता. जब पटने में रहता हूं, तो शैंपू से सिर धोता हूं. देहात में रहता हूं तो बालों को बेसन से धोता हूं."

"रेणुजी, आप कौन-सा तेल लगाते हैं?"

"बाप रे, तेल का नाम मत लीजिये. तेल से तो मुझे एलर्जी है. खाना खाते समय अगर हाथ में भी तेल लग जाता है, तो कई बार साबुन से हाथ धोता हूं."

"अच्छा, ये इतने सारे ब्रश और कंघियां किसलिए हैं?"

"बालों में तेल नहीं डालता न, इसलिए वे जल्दी उलझ जाते हैं. जब बाल बनाता हूं तो सबसे पहले ब्रश से झाड़ता हूं, फिर बड़ी कंघी से, फिर मोटी कंघी से और अंत में फिनिशिंग टच—इस छोटी कंघी से."

तो अब मैं समझी कि इतनी देर क्यों लगती है. दिनकरजी जब थे तो नीचे से ही चिल्लाते—'अरे जल्दी नीचे उतरो, कितनी देर लगाते हो सिंगार-पटार में रेणु !'

"गीताजी, बचपन में भी लोग मुझे नहीं छोड़ते थे. उस समय पांच-छः वर्ष का था. मेरे नाम पर मनौतियां मानी गयी थीं. मनौती पूरी होने पर ही मुंडन होता. मेरी बड़ी-बड़ी जटाएं बन गयी थीं सिर में. लोग कहते—'ए रिनुआ, जब हवा चलती है तो पेड़ में लगी इमलियां कैसे झूलती हैं, जरा दिखाओ तो लेमनचूस देंगे' और लेमनचूस की लालच में मैं सिर नचाकर, जटाएं हिलाकर दिखाता—ऐसे'.

"कभी आपको तकलीफ हुई है इन बालों से?"

रेणुजी एक आह भर कर बोले, "जी हां, सन् बयालीस में जब सेल में बंद था तो पुलिस वाले बड़ी बेरहमी से बालों को पकड़कर खींचते थे और दीवार पर सिर दे मारते थे. बहुत दर्द सहा था तब इन्हीं जुल्फों के कारण और पहली बार लंबे बाल रखने का दुख हुआ था. एक बात और बताऊं, जब सेल में था, तो जेलखाने के कंबलों में चीलरें भरी थीं. बदन में चीलर और बालों में जुओं का साम्राज्य छा गया. इतने जुएं कि कल्पनातीत. पहली बार अनुभव हुआ था कि जूं कैसी होती है और कान पर कैसे रेंगती है. तब जितनी जुएं पकड़ी थीं, कान पर ही पकड़ी थीं. जेल से छूटने पर जुओं से छुटकारे का सीधा जवाब—मुंडन करवा लिया."

"रेणुजी, एक बात बतलाइए, आपने अपने नाम के पीछे 'रेणु' कैसे जोड़ लिया?"

"बात यह थी कि जब मैं पैदा हुआ तो घर वालों पर कुछ कर्ज हो गया. दादी बोलीं—'अरे यह तो रिणुआ है. घर पर ऋण हो गया है.' उसी रिणुआ से रिणु और फिर रुणु हो गया. बड़ा हुआ तो पिताजी के एक मित्र ने कहा—'इसे रेणु कहो रेणु.' और मैं रेणु हो गया."

देखो-देखो आदमी सुधर रहा है...

मैंने पूछा, "रेणुजी, हर लेखक के लिखने का प्रायः अपना एक अलग तरीका होता है. आप कैसे लिखते हैं?"

रेणुजी जोर का ठहाका लगाते हैं, "मैं रात को लिखता हूं. जिस रात लिखना होता है, बहुत हल्का भोजन लेता हूं. बिस्तर पर लेट कर, पेट के नीचे तकिया दबा कर लिखता हूं. इसी संबंध में एक मजेदार बात. मैं जब लिखता हूं, तो रात बहुत देर तक लिखता हूं, जब तक मन की भड़ास नहीं निकल जाती. फिर दिन चढ़े तक सोता रहता हूं. नौ, दस बजे तक. ऐसी हालत में मोहल्ले वाले कहते हैं—'पियक्कड़ है. अरे जरूर रात में पी ली होगी. देखो इतना दिन चढ़ गया, अब तक सो रहा है.' जिस रात मैं सच में पी लेता हूं, लिखना-पढ़ना नहीं होता है. चुपचाप सो जाता हूं. सुबह तड़के ही उठकर टहलने निकल जाता हूं. मन मेरा उदास रहता है. मोहल्ले वाले खुश होकर कहते हैं—'देखो, देखो, आदमी सुधर रहा है. लगता है पीना छोड़ दिया है. देखा, कैसे सुबह-सुबह टहलने निकला है.' वे मुस्कराते हैं और मैं मन ही मन कुढ़ता हूं."

एक बार रेणुजी सुबह- सुबह पहुंचे थे. आकर बोले, "पुष्पजी, लतिका स्कूल में पढ़ाती है. बराबर कहती रहती है कि तुम कैसे लेखक हो? मेरे स्कूल के बच्चे तुम्हें नहीं जानते. बच्चों के लिए भी कुछ लिखो ना! देखिए, मैंने एक कविता लिखी है." और रेणुजी, एक बच्चे की तरह शुरू हो गये थे. पुष्पजी ने उन्हें रोक दिया. फिर हम टेप रिकार्डर सामने रखकर बोले थे, "आपकी पहली कविता है. टेप करूंगा. अब सुनाइए." रेणुजी ने यह कविता सुनायी तब से टेप सुनते हुए उसके कुछ अंश तो जबानी याद हो गये हैं—

मेरा मीत सनीचर

पद्य नहीं यह, तुकबंदी भी नहीं, कथा सच्ची है,
कविता जैसी लगे भले ही, ठाठ गद्य का ही है.
बहुत दिनों के बाद गया था, उन गांवों की ओर,
खिल-खिल कर हंसते क्षण अब भी, जहां मधुर बचपन के,
किंतु वहां भी देखा सब कुछ अब बदला-बदला-सा,
इसीलिए कुछ भारी ही मन लेकर लौट रहा था.
लंबी सीटी देकर गाड़ी खुलने ही वाली थी,
तभी किसी ने प्लेटफार्म से लंबी हांक लगायी,
'अरे फनीसरा' सुनकर मेरी जान निकल आयी थी
और उधर बाहर पुकारने वाला लपक पड़ा था.
चलती गाड़ी का हत्था धर झटपट लटक गया था
हांक लगाता लेकर मेरा नाम पुनः चिल्लाया—
'अरे फनीसरा' अब क्यों तू हम सबको पहचानेगा?...
मौका मिलते ही उसने, बातों की डोरी पकड़ी,
अब फिर कौन भला उसकी गाड़ी को रोक सकेगा.
'सुना बहुत पोथी पत्तर लिख कर के बड़े हुए हो,
नाम तुम्हारा फिलिम देखने वाले सब लेते हैं...
उसके मुखड़े पर छन भर मायूसी फैल गयी थी.
लंबी सांस छोड़ बोला था, सब फांकी है यार,
सभी चीज में यहां मिलावट, खांटी कहीं नहीं है,
कुछ भी नहीं पियोर, प्यार भी खोटा ही चलता है,
गांवों में भी अब विलायती मुर्गी बोल रही है.
मैंने पूछा—'खेती बारी, या करते कुछ धंधा?...
'खेती-बारी कहां कर सका' वह उदास हो बोला,
'मिडिल फेल हूं, मगर लाज पढ़ुवा की तो रखनी थी,
अपना था वह दोस्त पुराना फुटबालर जोगिंदर,
नामी ठेकेदार हो गया है, अब बड़ा धुरंधर.
काम उसी ने दिया, काम क्या समझो बस आराम,
सुबह शाम सब मजदूरों के ले-ले करके नाम,
भरता हूं हाजिरी बही 'हाजिर बाबू' सुन कर के,
इसीलिए सब मुझे 'हाजिरी बाबू' ही कहते हैं...
गला भर गया, दोनों आंखें डब-डब भर आयी थीं.
मेरा भी था वही हाल, मुश्किल से बोल सका था,
'जल्दी ही आऊंगा फिर' पर आंखें बरस पड़ी थीं.
पद्य नहीं यह तुकबंदी भी नहीं, किंतु जो भी हो,
दर्द नहीं जूठा जो अब तक मन में पाल रहा हूं...

रेणुजी कभी-कभी अचानक आ धमकते थे, "आज मैं थोड़ा आराम करूंगा. घर में या कॉफी-हाऊस में मैं पकड़ लिया जाता हूं..." फिर फरमाइश करते, "गीताजी, 'मकई बारी' पत्ती है? पिलाइए."

पुष्पजी और रेणुजी दोनों ही 'मकई बारी' चाय के बहुत शौकीन. जब लोग थोक भाव से आते तब यह चाय नहीं बनती...

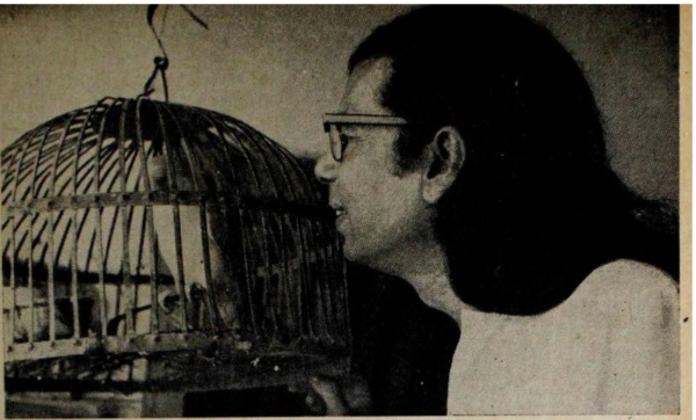

हीरामन यानी—'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' का कथा नायक यानी रेणु, जिन्हें पशु-पक्षियों से बेहद लगाव था और हीरामन (तोता) तो जहां भी नजर आ जाता, वह मुग्ध हो जाते थे. छाया : रॉबिन शॉ पुष्प

पत्ती बहुत महंगी और मुश्किल से मिलती.

मुझे ख्याल आता है. एक दिन रेणुजी आये थे, "पुष्पजी, बंबई से लौटे?" मैंने कहा, "ना." मेरे उदास चेहरे को देखकर वे मुस्कराये थे, "चिंता न करें गीताजी. मैं तीन-चार दिन पहले ही बंबई से आया हूं. पुष्पजी से भेंट नहीं हो सकी थी. टाइम्स के दफ्तर में उनके नाम स्लिप छोड़ आया हूं कि पटने में 'मकई बारी' आ गयी है. देखियेगा, वे भागे-भागे आयेंगे..." आज जब भी पुष्पजी के लिए चाय बनाती हूं, तो अचानक ही रेणुजी की याद आ जाती है. आना स्वाभाविक ही होता है, क्योंकि पुष्पजी इस पत्ती को 'मकई बारी' नहीं 'रेणु लीफ' कहते थे. आज भी आदतन कहते हैं, "गीता, 'रेणु लीफ' बनाओ." 'रेणु' कहते-कहते आवाज जैसे चनक जाया करती है. और मेरे कानों में एक आवाज गूंजने लगती है—'आप चिंता न करें. मैं टाइम्स के दफ्तर में स्लिप छोड़ आया हूं कि पटने में 'मकई बारी' आ गयी है.'

इसके साथ ही एक दूसरी स्लिप का ख्याल आता है... बिहार के जन-आंदोलन के समय पुष्पजी को पकड़ कर रेणुजी फारबिसगंज ले गये थे. साथ में जुगनू शारदेय और रामबचन राय भी थे. वहीं कहीं से उन्होंने इन लोगों के नाम एक स्लिप भेजी थी.

राबिष्प जी, राबरा जी—

मैं एक दिन और यहां अंडर ग्राउंड रहूंगा. कल प्रकट होऊंगा. कृपया अन्यथा न लें. for Jusha (मेरे लिए एक dot pencil भेज दें.)

एक दिन आप लोगों को सिमराहा भी आना है.

भाई ही, रेणु

मैं ढेर सारी बातें सोच रही हूं. रेणुजी वाला टेप खत्म हो चुका है. एक ओर भरा हुआ टेप घूम रहा है... कहीं कोई आवाज नहीं... दूसरी तरफ खाली स्पूल शांत-सा ठहरा हुआ है... इस स्पूल को देखकर लग रहा है, जैसे सब कुछ थम गया है... हर तरफ सन्नाटा... लतिकादी का इंटरव्यू लेना है... समझ में नहीं आता, कैसे मैं सीढ़ियां चढ़ूंगी, कैसे उस छोटे-से बोर्ड को देखूंगी, जिस पर पहली बार देखा था—'फणीश्वरनाथ रेणु'... जानती हूं, खटखटाने पर पहली बार की तरह ही दरवाजा खुलेगा और सामने एक औरत होगी—लतिका रेणु... लेकिन पहली बार की उस औरत और अब की इस औरत में कितना फर्क होगा... कैसे फेस करूंगी लतिका दी को... क्योंकि इस बार वे नहीं कहेंगी—'भीतर आइये न, बैठिए. रेणुजी बाहर गये हैं, अभी आ जायेंगे...!' ना... ना... अब मुझसे इंटरव्यू नहीं लिया जायेगा... मैं शांत पड़े खाली स्पूल को देखती हूं, सब कुछ ऐसा ही तो होगा उस फ्लैट में... शांत... खामोश... चुप! □

● रवींद्रांगन, 95, सब्जी बाग, पटना-4.

पटना-4.

रेणु स्मृतिः रचना खंड

प्रकाशित साहित्य से किसी भी रचनाकार की रचनात्मकता की पहचान सहज ही की जा सकती है किंतु उसकी अपूर्ण रचनाएं भी उसकी रचनात्मकता के समग्र आकलन के लिए अनिवार्य हो जाती हैं. इसीलिए इस खंड में हम रेणुजी की ऐसी रचनाएं भी दे रहे हैं, जो अपूर्ण हैं. यहां दी जा रही पहली कहानी (गप्प का शीर्षक) उन्होंने आधी मैथिली में लिखी थी तथा शेष आधी हिंदी में काफी समय बाद पूरी की. उनकी कहानियों के अतिरिक्त डायरी, गीत, टिप्पणियां, शब्द-चित्र भी इस खंड में हैं जिससे कि उनके चिंतन की दिशा को इन रचनाओं के जरिये और स्पष्ट समझा जा सके.

इन रचनाओं के प्राप्त कराने में श्री भूपेंद्र अबोध के सहयोग के प्रति हम कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं.

अप्रकाशित कहानी

गप्प का शीर्षक

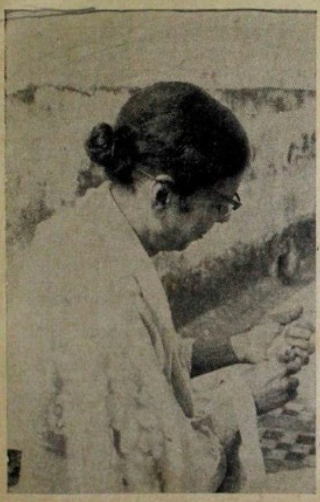

जनाने हेयर स्टाइल में रेणु (छाया : पुष्प)

इस बार गांव पहुंचकर—पहुंचकर नहीं, पहुंचते-पहुंचते रास्ते में ही जबरदस्त खबर सुनने को मिली कि अब हमारे इलाके में भी एक पेड़ जिला भर में प्रसिद्ध हो गया है. छः महीने बाद गांव गया था. मेरा गाड़ीवान कुसुमलाल छः महीने की गप्प संजोये था. ट्रेन से उतरकर उस पर नजर पड़ते ही समझ गया—गांव-घर का समाचार शुभ है. रत्ती भर भी अशुभ होता तो वह स्टेशन नहीं आता.

तो गाड़ी को जोड़कर, बैल को हांकते हुए उसने अपने छःमासे गप्प का थोड़ा आभास दिया, "अब अपने इलाके में भी एकठो देवहा पोखर हो गया है. लरैनपुर गांव में नरहवा पोखर था न, वही."

मैंने पूछा, "पोखर से क्या किसी देवता की मूर्ति निकली है?"

"ऊं. . . . ह," वह बोला, "पोखर के किनारे बेल का एक 'ठुठहवा' पेड़ था. कहते हैं, एक दिन एक बाबाजी उसके नीचे धूनी जोड़कर बैठ गये और बैठे-बैठे लापता हो गये. धूनी जल ही रही है. त्रिशूल-चिट्टा गड़ा हुआ है और बाबाजी लापता! बाबाजी को देखकर गांव का गंजेरी सब वहां गया था और उन्हीं लोगों के साथ बाबाजी का गप्प-सप्प हुआ था. बाबाजी 'कामरू-कमच्छा' के थे. कहते थे कि जो कोई मंगल-शुक्रवार को पोखर के किनारे उनकी धूनी में लकड़ी का एक 'चैला' चढ़ावेगा, उसका रोग-शोक साफ. . . . . !"

मैं बीच में कुसुमलाल को टोकना चाह रहा था, लेकिन उसने मुझे वह मौका नहीं दिया. बैल की डोरी के साथ-साथ वह गप्प की डोरी भी थामे रहा. बोला, "सो अब हर मंगल-शुक्रवार को पोखर के किनारे मेला लग जाता है. कहते हैं कि बाबाजी ने कहा था—'हम बैसने-बैसने (बैठे-बैठे) 'अलोपत्त' हो जायेंगे, फिर वैहने (वैसे ही) बैसने-बैसने किसी दिन फिन अपना आसनी पर लौट आयेंगे. हमरा धूनी की आग जेह दिन बुता जायेगा, समझना आर (और) हम नहीं लौटेंगे. तब इ पोखरा औ गाछो का महातम आलोपत्त. . . . "

कच्ची लीक की ढलान में गाड़ी पहुंची तो टप्पर की छतरी से मेरा सिर टकराया. मैंने हंसते हुए कहा, "जरा सड़क की तरफ देखकर गप्प किया करो. . . . "

कुसुमलाल कच्ची सड़क की ढलान को पार करते समय बोला, "देखते नहीं हैं. सड़क कैसी हो गयी? हरदम गाड़ी-छकड़ा का मेला. उस दिन धान कुटवाकर और आटा पिसवाकर लौटते समय. . . . "

मैंने पूछा, "अपने गांव के लोग भी जाते हैं क्या?"

कुसुमलाल की गप्प ने अब रंग पकड़ा. हाथ से दुआली नचाता हुआ बोला, "जाते हैं. समूचा गांव खाली हो जाता है. बात यह है कि वहां नाच-तमाशा करने वाले भी पहुंच जाते हैं, सो गांव के लड़के-फड़के सब जाते हैं."

"बीमारी ठीक भी होती है, या यूं ही?"

"ठीक होती है न तो! मैं भी गया था. देखते नहीं हैं—मेरे शरीर में अब एक जगह भी 'दिनाय' है?"

मैं आश्चर्यचकित था, उसकी पीठ देखने लगा—सचमुच!

कुसुमलाल तड़ातड़ गांव के दर्जन भर असाध्य रोगी-रोगिनियों के नाम बता गया, "ठठेरी टोला के घुत्तर दास का दम्मा, पछियारी टोला वाली मुसमात की मिरगी, पुरबारी टोला के जगेसरा की 'गर्मी'. . . . घर चलने पर मालूम होगा."

उसकी गप्प की अंतिम पंक्ति और 'मुचकी' हंसी मेरी आशंका को मजबूत कर गयी. पूछा, "क्यों रे, अपने घर से भी कोई? .."

कुसुमलाल अब विहंसने लगा, "सो तो घर चल ही रहे हैं, पता लगवे करेगा. अब गांव में किसी को अधकपारी है?"

"नहीं?"

"ऊं. . . हुंक."

मन-ही-मन समझ गया—अपनी 'अंदर-हवेली' से कौन-कौन गये होंगे. मेरे परिवार में दो व्यक्तियों को अधकपारी था. एक तो ठीक-ठाक हो गया, अब मैं ही बच रहा हूं.

मेरे सोचने के क्रम में ताल देता कुसुमलाल उत्साहित हुआ, "मालिक, अब आप ही बच गये हैं. आपके ही बहाने मंगलवार को. . . ."

पता नहीं क्यों, मुझे कुसुमलाल पर अचानक गुस्सा हो आया, "बार-बार कह रहा हूं कि सड़क की तरफ देखकर गाड़ी हांको. ."

उसके बाद वह चुपचाप गाड़ी हांकने लगा.

कितने दिन से अपने मन में जिस शुभ-संवाद को वह संजोये हुए था—सर्व रोग शोक कष्टदुख विनासी समाचार—जब वही 'फेल' हो गया तो आगे क्या बात बढ़े, और कैसे बढ़े? मुझे लगा, कुसुमलाल मन-ही-मन मुझसे रूठ गया है, और उस रूठने वाली बात पर अचानक एक बात मुझे याद हो आयी.

▣

एक बात पहले ही कह दूं कि कुसुमलाल मेरा गाड़ीवान ही नहीं, लंगोटिया यार भी है. हम बचपन में एक साथ खेल चुके हैं. मुझसे वह उम्र में छोटा है, इसलिए मुझे भैया कहता है. वह मुझे ही नहीं, मेरे मन को भी अच्छी तरह जानता है और मैं उसके दिल को. उससे बढ़कर मेरा भला चाहने वाला गांव में कोई नहीं. और सबसे बड़ी बात यह कि वह मेरे आंचलिक शब्दों (कहावत) का एक जीता-जागता शब्दकोष है—गन्ही महतमा, जमेहरलाल, इनकिलास जिंदाबाध, फेनूगिलास, भोंपा आदि शब्द मैंने उसी से प्राप्त किये हैं. पिछली बार आया तो उसने मुझे भूख हड़ताल के लिए एक नया शब्द दिया—खटपासी!

स्टेशन के साहूजी के गुड़ के कारखाने के फाटक के सामने कई कर्मचारी अपनी मांग मनवाने के लिए उन दिनों खाट पर लेटे-लेटे भूख हड़ताल कर रहे थे. होली का समय था और इलाके में गुड़ के कारखाने में हड़ताल—कुसुमलाल ने विरक्त होकर कहा था, "कारखाना चलेगा कैसे? फाटक पर आज दस दिन से चार-पांच आदमी 'खटपासी' लेकर पड़े हैं. . . ."

इसीलिए कुसुमलाल का इस तरह अचानक चुप हो जाने का मतलब था कि वह मुझसे रूठ गया है. नहीं तो, बैलों से बातें करते हुए भी वह गांव की कोई-न-कोई खबर सुना देता है. उसके बात करने की हर टेकनीक और शिल्प को मैं जानता हूं. मान लीजिये, गांव में किसी का बैल, किसी की बारात में गया और बारात से लौटने के बाद वह लंगड़ा हो गया, तो वह अपने बैलों को हांकते हुए कहेगा, "अरे, तुम भी क्या फलान सिंह के बेटे की बारात में गये थे कि डेग खोल कर नहीं चलते? . . ." इसके बाद मेरी ओर मुखातिब होकर कहेगा, "फलान सिंह के बेटा 'फुचफुच' करके बैलगाड़ी ले गया. वहां ऐसा खेसारी चरा कि बैल को 'बातिस' कर दिया. बातिस आप नहीं समझा! गठिया-बात!" पा गये न एक अमोल शब्द. . . बातिस!

मुझे लगा, मैंने उसके प्रथम संवाद को ही 'भेड़िया धसान' कहकर उसके दिल को दुखाकर अन्याय किया है. मैं उसके मनोरंजन का उपाय सोचने लगा. तब तक 'बंसवारी' के उस पार से एक प्रौढ़ के गले से एक पुराना गीत—बलवाही नामक गीत—निकल पड़ा—"गै धानी कानैछें कथिलैगे—जाइब बंगाला, आनब मोहनमाला, तोहरे पिन्हावेलागे. . . .

आजकल गांव-घर का चरवाहा भी 'मेरी नजर लग जायेगी' और 'मेरा महबूब आया है' ही गाता है. पुराना गीत सुनकर मैं उत्कर्ष और प्रसन्न हुआ, "क्यों रे कुसुमा! बलवाही के गीत अब भी गाते हैं?"

कुसुमलाल ने कनखी नजर से मेरी ओर देखा, फिर हंस पड़ा. बोला, "कलाली बूढ़ा है. उसको बलवाही के अलावा कोई गीत आता ही नहीं."

कुसुमलाल के मन की कुंठा दूर हो गयी. उसने ताड़ लिया कि बाकी गप्पों की मुन्नी खोलने का यही अवसर है. हमारे इलाके में परती जमीन पर पिछले कई वर्षों से कोसी प्रोजेक्ट की कृपा से अच्छी खेती होने लगी है. नयी किस्म की धान—आई. आर. एइट, ताइचुन, सोनरा आदि. कुसुमलाल इन नामों के चक्कर में नहीं पड़ता. सीधे शब्दों में कहता है—बलैंकिया धान और बलैंकिया गेहूं! इलाके की इस सुख-समृद्धि के वर्णन के लिए जहां मैं पचास पंक्ति लिखकर भी अपनी पूरी बात कहने में खुद को असमर्थ पाता हूं, वहां वह एक ही पंक्ति में सब कुछ कह देता है, "जमीन वालों के लिए तो समझिये कि सतयुग आ गया है, और जब जमीन वालों के लिए सतयुग है, तो बेजमीन वाले भी समझिये कि 'तेरता' में हैं. कलयुग में अब कोई नहीं है."

कुसुमलाल ने हुलसकर बैलों को टिटकारी देते हुए कहा, "चल बेटा कदमचाल, 'लतरल रोद' तक."

मैंने पूछा, "लतरल रोद क्या है?"

उसने दूसरा संवाद किया, "अब अपने गांव के बगल से भी एक सरकारी पक्की सड़क के कन्हा-ऋण पड़ गया है—लतरल रोद—डिल्ली से शुरू होकर पूरब 'कामरूप-कमिच्छा-हसाम' तक."

"ओ! लेटरल रोड,"—मैंने पुलकित होकर कहा.

मेरा पुलकित होना था कि लगा, उसके सभी शुभ-संवाद एक ही साथ निकलने के लिए पंख फड़फड़ाने लगे—गांव में किसकी गाय-बाछा बियाई है, किसको पोता हुआ है और किसके बाग में 'बलैंकिया' पपीता हुआ है—वह सब एक-एक कर सुना गया.

गाड़ी एक 'बैंसवाड़ी' की झुरमुट को पारकर जब बहुत दूर तक फैले 'वन विभाग' के साइन बोर्ड के पास आयी तो कुसुमलाल ने गाड़ी को दक्षिण वाली सड़क की ओर मोड़ा.

अचानक कुसुमलाल को एक ऐसे संवाद की याद आयी,

बच्चों के बीच रेणु खुद भी बच्चे बन जाते थे . . .

जिसे सुनाने के लिए उसने बैलों के रास थाम लिये. बोला, "भैया, 'बनभाग' की एक बात जानते हैं?"

उसने 'वन विभाग' के लिए एक नया शब्द दिया!

"क्या बात रे?"

"बनभाग के दखिनबारी दिस आजकल देखियेगा तो आसमान एकदम लाल टेस!"

"सो क्यों रे?"

गप्प का शीर्षक देने के बाद कुसुमलाल अब अपनी भूमिका बांधने लगा, "बनभाग के उत्तर में तो 'नड़ेलवा गांव' है—गांव का बच्चा-बच्चा 'नठैत'. बनभाग में हजारों सेमर के गाछ लगाये गये थे, मगर नड़ेलवा गांव के लोगों ने एक भी गाछ बचने नहीं दिया. सब काटकर लाठी बना लिया. . . मगर दखिनबारी ओर जो गाछ बच गये हैं, सो आजकल फूले हैं. ऐसा फूला है कि देखने वाला जो है सो देखता ही रह जाये."

"सच्च रे. . . . तऽ गाड़ी उसी ओर से ले चलो. हड़बड़ क्या है? घर ही तो जाना है."

कुसुमलाल उत्साह में गाड़ी को साबिक लीक पर ले आया. कुछ दूर जाने के बाद कुसुमलाल ने गाड़ी को रोकते हुए मुझे दिखलाया, "है वैह! देखिये." सचमुच देखकर बहुत देर तक देखता ही रह गया. दिन ढलने में अभी देर है मगर आसमान लाल हो गया है. जहां तक दृष्टि जाती है—लाल-लाल! फूल-फूल! देखता ही रहा मंत्रमुग्ध!

कुसुमलाल ने कहा, "यदि नड़ेलवा गांव वाले उत्तरबारी ओर 'समापत्रन' नहीं करते तो कहिये, और कैसा शोभा धरता?"

'शोभा' शब्द ने मुझे स्मरण दिला दिया कि ऐसे अभूतपूर्व स्वर्गीय दृश्यों को सदा बांधने का मंत्र भी मेरे पास है. मैंने बैग से अपना कैमरा निकालकर कल-कांटा ठीक एडजस्ट किया . . . व्यू-फाइंडर. . . कुसुमलाल व्यू-फाइंडर में झांक रहा था.

मैंने कहा, "कुसुम भाई, तू उस आक की झाड़ी तरफ जाओ तो! . . . हं. . . और . . . तनिक पच्छिम . . . अब दाहिना तरफ अरे, दाहिना. खाने वाले हाथ की तरफ. . . हूं . . . ठीक! माथे में बंधी गमछी को तनिक ठीक कर लो. . . हां बस . . ."

कुसुमलाल विहंसा. उसके दांतों पर पड़ती सूरज की रोशनी. क्लिक!

बहुत देर तक मैं सेंवल के पेड़ों की तरफ देखता रहा. सूर्यास्त के बहुत देर बाद तक लाल आकाश! बदलते दृश्यों को देख, बहुत देर तक सुध-बुध गायब रही.

"भैया, अब चलिये."

"हां, चलो, लेकिन कल सूरज उगने के एक घंटा पहले इस जगह आना होगा."

कुसुमलाल मेरी तरफ प्रश्नभरी दृष्टि से देखता रहा. मैंने कहा, "हां कुसुम भाई, मेरी अधकपारी का यही 'टोटमा' शुभ होगा."

कुसुमलाल ने क्या समझा, पता नहीं. लेकिन अंधेरे में उसकी हंसी . . . □

दूर से साक्षात्कार करते रेणु

अधूरी कहानी

रतनी

रतनी ने मुझे देखा तो घुटने से ऊपर खोंसी हुई साड़ी की 'कोंची' को जल्दी ही नीचे गिरा लिया. 'साइरन' की तरह गूंजने वाली उसकी आवाज कंठ में अटक गयी. साड़ी की कोंची नीचे गिराने की हड़बड़ाहट में उसका 'आंचर' भी खुल गया. उस संकरी पगडंडी पर—जिसके दोनों ओर झरबेरी के 'बाड़े' लगे हों—अपनी भलमनसाहत दिखलाने के लिए गर्दन झुका लेने के अलावा और बस एक ही उपाय था. मैंने वही किया. अर्थात्, पलट गया. मेरे पीठ पीछे रतनी ने अपने उघड़े अंगों को ढंक लिया. लेकिन उसके कंठ में अटकी हुई आवाज एक उग्र एवं अश्लील गाली के साथ फिर गूंज उठी. मैं लौटकर अपने दरवाजे पर आ गया और बैठकर रतनी की गालियां सुनने लगा.

नहीं, वह मुझे गाली नहीं दे रही थी. जिनकी बकरियों ने उसके पाट का सत्यानाश किया है, उन बकरी वालियों को वह गलिया रही है. सारा गांव, बूढ़े-बच्चे-जवान, औरत-मर्द उसकी गालियां सुन रहे हैं. लेकिन उनके सुनने और मेरे सुनने में फर्क है. मैं सचेतन रूप से, अर्थात् जिस तरह रेडियो से 'महत्वपूर्ण' वार्ताएं सुनता हूं, इन गालियों को सुन रहा हूं. कान में उंगली डालने के ठीक विपरीत, एक-एक गाली को कान

में डाल रहा हूं. क्योंकि जेली की मां ने टोका, गांव भर की बकरी पोसने वालियों को सार्वजनिक गालियां दागने के बाद रतनी ने जेली की मां के प्रजास्थान को केंद्र करके एक स्थूल गाली दी थी. जेली की मां ने टोका, "पहले खेत में चलकर देखो. एक भी पत्ती जो कहीं चरी हो . . . ."

रतनी शायद इसी 'टोक' की प्रतीक्षा कर रही थी. अब उसकी बोली लयबद्ध हो गयी. वह एक-एक शब्द पर विशेष बल देकर, हाथ और उंगलियों से 'बतौना' बतलाकर कहने लगी कि वह पाट के खेत में जाकर क्या देखेगी, अपना 'सिर'? इसके बाद बहुत देर तक रतनी की बातें सुनता रहा. लेकिन लिख नहीं सकता—एक शब्द भी.

किंतु, रतनी के बारे में अब और आज और इसी वक्त कुछ नहीं लिखा गया, तो जीवन में कभी भी नहीं लिखा जायेगा. क्योंकि रतनी की गालियों में मर्माहत और अपमानित करने के अलावा उत्तेजित करने की तीव्र शक्ति है. रतनी का नाम 'नैना-जोगिन' मैंने ही एक दिन दिया था. तब वह सात-आठ साल की रही होगी. देहात में झाड़-फूंक करने वाले ओझा-गुनी के हर मंत्र के अंत में—'दुहाय ईस्सर महादेव गौरा पारवती—नैना-जोगिन . . . . आदि नामों में लगता है, ये मंत्र नैनाजोगिन नाम की किसी भैरवी द्वारा सिद्ध किये गये होंगे.

सात साल की उम्र में जब उसने, उसकी मां ने हमारे गांव के एक धनी, प्रतिष्ठित और वृद्ध व्यक्ति को 'फिलचक्कर' में डाल दिया, तब मेरे मुंह से यही पंक्ति निकली थी—दुहाय इस्सर महादेव गौरा पारवती—नैनाजोगिन . . . और इसके बाद रतनी का नाम 'नैनाजोगिन' मशहूर हो गया था. पंचायत में सात साल की रतनी ने अपना बयान जिस बुलंदी और विस्तार से दिया था—कोई जन्मजात 'नैनाजोगिन' ही दे सकती थी. अब तो उसकी आंखें भी उसके नाम को सार्थक करती हैं. लेकिन सात साल की उम्र में ही 'कहर' मचाने वाली लड़की की आंखों से आंख मिलाने की ताकत गांव के किसी बहके नौजवान में भी कभी नहीं हुई. उसको देखते ही लोगों की आंखों के सामने पंचायत, थाना, कचहरी, जेल-सेल के दृश्य नाचने लगते! . . रतनी की मां सरकारी हाकिम को भी कानून सिखा आयी है. बहस कर आयी है 'सदर सेशनकोट' में.

पिछले ग्यारह वर्षों में रतनी की बेवा मां ने मुंह के जोर से ही दस बीघे जमीन 'अरजा' है; पिछवाड़े में कलमी आमों के दो पेड़ और दरवाजे पर लीची हर साल फलती है. सूद पर रुपये भी लगाती है और दस पैसा हाथ में भी है. घर में अनाज भी. इसलिए अब गांव की मालकिन भी वही है. गांव के पुराने जमींदार और मालिक जब किसी रैयत पर किसी कारण-वश नाराज होते थे, तब इसी तरह गुस्सा उतारते थे. यानी, उसकी बकरी, गाय वगैरह को परती जमीन पर से ही हांक कर दरवाजे पर ले आते थे और गालियां देते थे, मारपीट करते और अंगूठे का टीप लेकर ही खुश होते थे.

जेली की मां कल हाट जाते समय आम की टोकरी ढोकर नहीं ले गयी—इसीलिए रतनी और रतनी की मां ने आज इस झगड़े का 'सिरजन' किया है—जानबूझकर.

जेली का बाप मेरा हलवाहा है. हलवाहा ही नहीं, सारी खेती उसी के भरोसे है. इसीलिए जेली की मां हम लोगों के वर्तन-वासन मांजती है. इसीलिए रतनी अब अपनी गालियों का रुख धीरे-धीरे हमारी ओर करने लगी, "तू किसका डर दिखलाती है? पटना से आये हुए भतार का? . . . . रोज मांस और 'ब्रांडिल' पीकर तेरे (प्रजास्थान में) तेल बढ़ गया है? एं . ."

मुझे जेली की मां की गंदी, हल्दी-लहसुन की गंध से भरी साड़ी की महक लगी. लगा, रतनी अब मुझे बेपर्द करेगी. नंगा करेगी.

उधर जेली की मां ने क्या जवाब दिया कि रतनी नाचने लगी—अपने आंगन से निकलकर. उसका घर हमारे दरवाजे से दस रस्सी दूर है, लेकिन सामने है. मैं रतनी का नाच देखने को बाध्य था. गालियां अब मुझे 'साट' कर दी जाती हैं. मेरे नथुने फड़के. कनपटी गर्म हुई. उसकी गालियों के एक-एक बोल अनमोल थे, बेमेल नहीं. उसकी काव्य-प्रतिभा ने मुझे अचंभे में डाल दिया. उसकी टटकी और तुरत रची हुई पंक्तियों में वह सब कुछ था जो कविता में होता है—बिंब, प्रतीक . . . . वह गंवई बोली में नहीं, ठेठ हिंदी में : अटना का साहेब और पटना की मेम, रात खाय कबूतर और सुबह करे नेम, तेरे झुमका और नथिया और . . . [अपूर्ण]

सुंदरियो !

सुंदरियो-यो-यो
हो-हो
अपनी-अपनी छातियों पर
दुद्धी फूल के झुके डाल लो!
नाच रोको नहीं.
बाहर से आये हुए
इस परदेशी का जी साफ नहीं.
इसकी आंखों में कोई
आंखें न डालना.
यह 'पचाई' नहीं
बोतल का दारू पीता है.
सुंदरियो जी खोलकर
हंसकर मत मोतियों
की वर्षा करना
काम-पीड़ित इस भले आदमी को
विष-भरी हंसी से जलाओ.
यों, आदमी यह अच्छा है
नाच देखना
सीखना चाहता है.

▣ फणीश्वरनाथ रेणु

अधूरी कहानी

संत कबीर

रूमा जब चली गयी तो मैं ड्रेसिंग-टेबुल के पास जाकर अपना चेहरा देखने लगा. नहीं, एक भी बाल कहीं सफेद नहीं. चेहरे के किसी कोने में झुर्री नहीं. किंतु, रूमा जब तक रही और बातें करती रही, मुझे लगता था—मेरे सिर के सभी केश पटसन की तरह सफेद हो गये हैं. चेहरे पर झुर्रियां पड़ गयी हैं और मेरी दंत-पंक्तियां नकली हैं.

रूमा मेरे फ्लैट में कभी अकेली नहीं आयी. जब आती, अपने छोटे भाई गोपू या छोटी बहन डौली के साथ. तब कभी मैंने ऐसा महसूस नहीं किया. बल्कि, ठीक उल्टा. यानी, जब तक रूमा रहती, मेरी कनपटी गर्म रहती. नाक की नोक और होंठों के कगार पर लगता चींटी चल रही है और मेरी आंखों में रूमा रह-रहकर न जाने क्या देखती कि अपनी छाती के आस-पास के कपड़े ठीक करने लगती.

किंतु इस बार लगा कि वह मेरे मुंह पर तमाचा मारकर चली गयी है. उसको अकेली देखकर मुझे अचरज हुआ. मैंने पूछा, "अकेली ही आयी हो?"

वह हंसकर बोली,"अकेली हूं तो 'दुकेली' कैसे आऊं? किस को साथ लाऊं?"

"क्यों, गोपू-डौली. . . . .?"

रूमा हंसने लगी, सशब्द! हंसते-हंसते लोट-पोट हो गयी. फिर बोली, "जानते हैं, अरूप भाई ने गोपू-डौली का क्या नाम रखा है. . . . . ?"

अरूप का नाम लेते समय आज उसकी आंखों में लाज की हल्की झलक दिखलाई पड़ी. बोली, "काका! . . . एक प्राब्लम लेकर आयी हूं आज!"

अस्पताल में रेणु : शेर बिना केश के जंचता नहीं, मैं श्रीहीन हो गया हूं! (छाया : पुष्प)

"ठहरो, मैं पहले चाय का प्राब्लम हल कर लूं." मैं रसोईघर में घुसा.

"नहीं, चाय-वाय का झमेला छोड़िये. आज कुछ भी खाने-पीने का जी नहीं करता. सुनिये न . . ." कहती हुई वह मेरे पीछे-पीछे रसोईघर में घुस आयी.

मैं रूमा का साहस देखकर चकित हो गया. वह मेरे कंधे को छूकर बच्चों की तरह मनुहार भरी बोली बोलने लगी, "हूं. . . काका! कहिये न?. . . . मैं क्या करूं?. . . काका! बोलिये न. हूं. . . . ऊं. . . . ऊं. . . .!"

मुझे अवाक देखकर भी उसके हाव-भाव में कोई परिवर्तन नहीं आया. कहती गयी, "चाय-वाय रहने दीजिये. पहले मेरी बात. . . . . ."

"बिना चाय पीये मैं अपनी ही कोई समस्या नहीं सुलझा सकता, सो तो जानती हो. चलो, उस कमरे में बैठो." मैंने मुस्कराकर कहा.

चाय पीते हुए मैंने पहला सवाल किया,"पहले यह बताओ कि भाई साहब या भाभी को यह मालूम है कि तुम मुझसे मेरे फ़्लैट में मिलने आ. . . . . ."

रूमा अपना 'पोथी-पत्तर' दिखलाकर हंसी, "पढ़ने आयी हूं. बाबा को मालूम है कि आपने कबीरदास का गहरा अध्ययन किया है."

"लेकिन उन्हें यह भी अच्छी तरह पता है कि मैं संत कबीर नहीं."

वह खिलखिलाकर हंस पड़ी. उसकी खुली हंसी मुझे भली लगी. मैंने पूछा, "अच्छा, अब बतलाओ, कैसी समस्या है? दैहिक, दैविक या. . . . . "

हालांकि हम दोनों के सिवा कमरे में और कोई नहीं था. फिर भी वह कुर्सी को खिसकाकर मेरे करीब आ गयी और मद्धिम स्वर में कहने लगी, "काका! . . . आपसे लाज क्या?. . . बात यह है कि. . . बात यह है कि अरूप भाई. . . . अरूप भाई. . . . क्या बताऊं?"

मैंने कहा, "कहने की जरूरत नहीं. समझ गया. अरूप भाई नहीं, अरूप कहो."

लगा, रूमा मुझसे लिपट जायेगी, किंतु लिपटी नहीं. बोली, "आप कितने अच्छे हैं काका. इसीलिए तो आपकी शरण में आयी हूं. अरूप ने भी कहा. . . . . "

मैंने गंभीर होकर कहा, "तो मामला ढाई अक्षर का है?"

"हां काका." रूमा हंसती गयी.

"शादी करना चाहते हो तुम लोग?"

"जाहिर है."

"बाधा क्या है?"

"जाति."

मैंने कैलेंडर की ओर देखा, "क्या करना होगा मुझे?"

"अभी कुछ नहीं. लेकिन बाद में आपको सब कुछ करना होगा."

"तात्कालिक समस्या क्या है?"

"तात्कालिक ?. . . मैं अरूप भा. . . . अरूप से खुलकर बातें कर लेना चाहती हूं."

"अब तक बातें खुलकर नहीं हुईं?"

"कहां हुईं कभी. हालांकि वह रोज आता है, घंटों बैठता है. बाबा-मां से दुनिया भर की बातें करता है. गोपू-डौली के साथ खेलता है और जाते समय दरवाजे के पास रोज धीमे स्वर में एक ही बात कहता है, "रूमा, अब नहीं सहा जाता."

"खत नहीं देता?"

"नहीं."

"तुम क्यों नहीं लिखतीं?"

"लिखा-पढ़ी में हजार बखेड़े हैं."

"तुम क्या जवाब देती हो?"

"कुछ नहीं."

"कितने दिनों से यह सब चल रहा है?"

"पिछले छः महीने से."

"अरूप तो बहादुर लड़का है, फिर. . . . ?"

"उसकी सारी बहादुरी हमारे घर में आकर हवा हो जाती है. इसीलिए. . . . . "

"इसीलिए?"

"आपकी शरण में आयी हूं. अरूप ने भी कहा, 'काका का फ्लैट. . . . इज द बैस्ट प्लेस. . . . ' "

इतनी देर में मेरी आंखें खुलीं. चुस्त पाजामे और तंग कुर्ते में कसी रूमा की देह पर बातें करते समय एक लहर आती है और वह हर शब्द के साथ हथेली की उंगलियों को नचाती है. फर्श पर उसके चपल चरण थिरकने लगते हैं. मैं कुछ क्षण तक मन के पर्दे पर रूमा और अरूप को 'टिवस्ट' करते देखता रहा. फिर खुद 'शेक' नाच के ताल पर गर्दन हिलाने लगा. वह जो कुछ समझाने आयी थी, समझ गया. रूमा कल से मेरे फ्लैट में सप्ताह में दो बार 'कबीर' पढ़ने. . . अरूप भी आयेगा. मैं फ्लैट में रहूं या नहीं, कोई बात नहीं. सिर्फ डुप्लिकेट चाभी दे देने से ही काम चल जायेगा.

मैंने गंभीर होकर कहा, "किंतु कबीरदास. . . . ?"

रूमा उठते हुए बोली, "गोली मारिये कबीरदास को. . . "

सो वह जब चली गयी तो मुझे लगा, वह मेरे मुंह पर तमाचा लगा गयी है. अपमान और ग्लानि से मेरा सारा शरीर झनझना उठा. . . . आपसे क्या लाज? आपसे क्या डर?

▣

मैंने संत-साहित्य का अध्ययन किया है, किंतु मैं संत नहीं. लोगों की नजर में 'असंत' हूं जिसने क्रमशः तीन-तीन भले घर की भोली-भाली लड़कियों का पाणिग्रहण किया और छोड़ा है. किसी कोमलमति बालिका के मां-बाप उसे ऐसे खूंखार और हिंस्र व्यक्ति के पास अकेली जाने की अनुमति कैसे दे सकते हैं? और रूमा कहती है कि वह मुझसे डरती नहीं, लजाती नहीं.

रूमा को जब पहली बार देखा था, वह फ्राक पहनती थी, पांचवीं में पढ़ती थी. लीला (मेरी तीसरी संगिनी) उसके स्कूल में पढ़ाती थी, इसीलिए कभी-कभी वह अपनी मां के साथ हमारे घर आती थी.

रूमा की मां जब आती, किसी-न-किसी बहाने लीला मेरी पहली 'संगिनियों' की चर्चा करना नहीं भूलती. कभी रेणुका

(पहला) के गीत और गले की तारीफ कर जाती, किसी दिन कमला (दूसरी) के रूप का वर्णन कर जाती. रूमा की मां मुस्कराती चुपचाप सुनती. कभी हंसकर कहती, "मर्दों को रूप-गुण नहीं दीदी, ऐसे मर्दों को 'नित्य नूतन' चाहिए. . . . ."

वे दोनों घंटों मेरी ही बातें करतीं. किंतु जब रूमा की मां चली जाती तो मास्टरनी लीला अपना सही रूप धर लेती. सौ बार पूछे प्रश्नों को फिर दुहराती और मैं अपना रटा हुआ जवाब दुहराता :

"रेणुका का गला बहुत मीठा था."

"अब भी है."

"रोज़ बोलती और गाती है."

"मुझे तो मीठी नहीं लगती."

"मुझे भी नहीं लगती."

"कमला अपूर्व सुंदरी थी न?"

"अब भी है."

"हास्पिटल की सभी नर्सों से सुंदर है."

"मुझे तो सुंदरी नहीं लगती."

"मुझे भी अब नहीं लगती."

"रेणुका को क्यों छोड़ा?"

"मैंने नहीं, उसने ही मुझे छोड़ा."

"क्यों?"

"मैं तबला बजाना नहीं जानता था."

लीला खिलखिलाकर हंस पड़ती, "और कमला? उसको तुमने छोड़ा या उसने..."

"हां, कमला को मैंने ही छोड़ा."

"क्यों?"

"वह मुझे चिर-रोगी, यानी सदा बीमार समझती थी."

"मैं तुमको क्या समझती हूं?"

"सदाबहार."

"मुझे भी छोड़ दोगे किसी दिन?"

"कौन किसको छोड़ेगा, यह कौन कह सकता है?"

और लीला जिस दिन इस घर से निकलकर हॉस्टल में रहने चली गयी, उसके एक दिन पहले रूमा की मां आयी थी. रात में लीला ने पूछा था, "तुम इतनी शराब क्यों पीने लगे हो?"

"तुम इधर शराबबंदी पर लेक्चर क्यों देने लगी हो?'

"तुम जानवर हो. मुझे सब मालूम है."

अचरज की बात! आखिरी रात को रेणुका और कमला ने भी यही कहा था—हू-ब-हू!

सुबह जब उठा, सारे जवाहर नगर में यह बात फैल गयी थी. रूमा की मां ने हर 'ब्लाक' के हर 'फ्लैट' में यह संवाद सूर्योदय के पहले पहुंचा दिया था.

रूमा के पिता मेरे मित्र हैं. मेरी ही उम्र के हैं, मगर गंजे हैं. रसिक व्यक्ति हैं, किंतु बीवी के सामने कभी चूं भी नहीं कर सकते. मेरा अनुमान है, बीवी उसे पीटती होगी.

लीला के जाने के बाद एक दिन रास्ते में मुझे देखकर उसने गाड़ी रोक दी थी. हमेशा की तरह, "घर चल रहे हो? आओ."

मुझे उसने सैकड़ों बार 'लिफ्ट' दी थी. वह मुझे मेरे ब्लॉक के पास कभी नहीं छोड़ता. सीधे अपने फ्लैट में ले जाता. हंसते हुए कहता, "देखो, किसको पकड़ लाया हूं!" लेकिन उस दिन मेरे ब्लाक के पास गाड़ी रोककर उसने कहा था, "मेरी 'मदाम' तुमसे इतनी नाराज है कि तुम्हारा मुंह नहीं देखना चाहती. लीला से उसकी गहरी दोस्ती हो गयी थी न? इसीलिए. . . ."

मैंने गाड़ी से उतरते हुए कहा, "उसकी दोस्ती रेणुका और कमला से भी गहरी ही थी."

करीब दस महीने के बाद, पिछले महीने अचानक खादी ग्रामोद्योग भवन में जब मिली तो लगा कि वह अब मेरा मुंह देखना चाहने लगी है.

दस महीने में ही रूमा काफी बड़ी हो गयी थी, दीखने लगी थी. मैंने उसकी मां से धीरे-से कहा था, "रूमा तो आपकी छोटी बहन कनक की तरह लगती है."

रूमा की मां गदगद हो बार-बार घर पर आने का निमंत्रण देने लगी थी. "आइये न, किसी दिन."

लेकिन वादा करके भी मैं नहीं गया तो गोपू और डौली के साथ रूमा को भेजा गया मेरे पास, मुझे बुलाने के लिए. और इसके बाद रूमा के पिता ने 'लिफ्ट' देना शुरू कर दिया. रूमा की मां अपने बच्चों के साथ फिर मेरे फ्लैट में आने लगी.

किंतु रूमा की माता (पिता) और रूमा मुझे अचानक इंद्रियजीत और संत समझने लगीं तो मुझे बहुत अचरज हुआ था, और उस दिन रूमा के जाने के बाद मैंने अपने को ढूंढ़कर फिर निकाला. धूल-गर्द को झाड़-पोंछकर देखा—रोम-रोम में आग की बूंदें जगमगा रही हैं. . . .नखों और दांतों में अब भी वैसी ही तेज धार है. भूख की आग मंद नहीं हुई है. . . आपसे क्या डर? आपसे कैसी लाज?. . . .

दूसरे दिन रूमा फिर आयी. आते ही पूछा, "अरूप नहीं आया है?" फिर घड़ी देखकर बोली, "आता ही होगा."

मैंने पूछा, "अरूप के आने के बाद मुझे कितनी देर के लिए बाहर चला जाना पड़ेगा?"

"एक मिनट के लिए भी नहीं. आप कमरे में ही रहेंगे."

"तुम्हें कोई असुविधा तो नहीं होगी?"

"कैसी असुविधा?. . . .छिः काका! आप भी कैसे हैं? हम सिर्फ बातें करेंगे बस!"

इतनी देर बाद रूमा ने देखा—ड्राइंगरूम के कनवर्टेबल कॉच को खोल दिया गया है और उस पर चादर बिछी हुई है. उसने बनावटी क्रोधभरी निगाह से मेरी ओर देखकर पूछा, "यह क्या किया है आपने? क्यों?. . . .छिः काका. आपने हमें ग़लत समझा है."

मैं बोला, "तुम यहां बैठो. मैं उस कमरे में बैठकर अपनी 'लिखाई' समाप्त कर लूं. आज की डाक से ही भेजना है."

रूमा ने पूछा, "क्या लिख रहे हैं?"

"एक सवाल का जवाब देना है"—मैंने संपादक की चिट्ठी पढ़ दी—हिंदी फिल्मों में चुंबन. . . . .

दरवाज़े की कुंडी खड़की. रूमा दौड़कर दरवाजा खोलने गयी. अरूप नहीं, डाकिया टेलीग्राम लेकर आया था.

रूमा बेचैन होती गयी. एक घंटा गुजर गया. मेरा लेख समाप्त हो गया. अरूप नहीं आया. वह उदास होकर धीरे-धीरे बुझने लगी. लगा—अब रो देगी. [अपूर्ण]

अधूरी कहानी/अधूरा शब्द-चित्र

जाहिद अली

अंग्रेजी राज में भी इस इलाके के लोगों ने कानून की कभी परवाह नहीं की. दसगज्जा से चौदह कोस दक्षिण-उत्तर (नेपाल)-पूरब-पच्छिम आज भी पुलिस विभाग के अधिकारियों के नक्शे में यह हिस्सा लाल रोशनाई से घिरा हुआ है—बदमाश इलाका! जिसके एक ओर, यानी उत्तर की ओर नेपाल की घनी तराई, पच्छिम कल-कलकर बहती हुई कोसी नदी, पूरब और दक्षिण का हिस्सा आठ महीने पानी से घिरा रहता है. सिवा हाथी के और किसी सवारी पर सवार होकर गांवों में निरापद नहीं पहुंचा जा सकता.

मोतीटप्पू इलाके पर असल राज—दो साल पहले तक—जाहिद अली का था. जाहिद अली का नाम सुनकर देह आज भी कांप जाती है. हमारे इलाके की माताएं अपने रोते हुए बच्चों को

खुद की छाया से ही दो बातें

चुप कराने के लिए अब भी डराती हैं—'आ रहा है जाहिद अली का सिपाही!'

जाहिद अली के सिपाही!

जाहिद अली कुल जमा बीस बीघे जोत का मामूली काश्तकार था. लेकिन उसके डेढ़ हजार सिपाही थे. सारे इलाके में किसकी जमीन में अच्छी फसल लगी, किसके बाग में अच्छे फल लगे हैं या किसके पास दुधार गाय-भैंस, तेज चलने वाले घोड़े, गाड़ी के बैल हैं—जवान, पहलवान लड़का, तो वह जाहिद अली का! उसके सिपाहियों में मुसलमानों से अधिक संख्या हिंदुओं की थी और दोनों देश—हिंदुस्तान, नेपाल—के फरार, खूंखार, खूनी-डकैत, हत्यारे!. . . जाहिद अली की खिदमत में हाजिर होकर, ईमान खाकर सब कुछ खुलासा बतला दो, फिर करनल-जरनल, कलक्टर-कमिश्नर, पुलिस-दारोगा, किसी का कोई डर नहीं. सब मिलाकर सौ छोटे-बड़े गांवों के लोग जाहिद अली की मरजी से जीते थे, मरते थे.

दोनों देशों के सरकारी अफसर जाहिद अली की कदर करते थे. अपने-अपने देश-सभा की मेंबरी मिली थी. 'खां बहादुरी' मिली थी. मोरंग (नेपाल) के करनल हर बार दीवाली के समय पांच दिनों तक जाहिद अली के साथ जुआ खेलते थे. राज बनैली वाले जब भी शिकार के लिए आते, जाहिद अली की कदर करते. कलकत्ते की मशहूर टिंबर कंपनी के बड़े सेठजी जब कभी जोगबनी आते, जाहिद अली उनके सैलून में.

याद है, जब पहली बार बहुत करीब से जाहिद अली को देखा था, उस समय मैं नंगा खेला करता था. यों, हमारे गांव के बच्चे—लड़के-लड़कियां—आठ-नौ साल की उम्र तक नंग ही रहते थे. गेरुआ रंग की चपकन, गेरुआ रंग का केश और दाढ़ी, पैर में खड़ाऊं, गोरा रंग और नीली आंखें. . . .हमारे गांव में एक बेवा औरत की पंचायत में दल-बल के साथ, हाथी पर सवार होकर जाहिद अली आया था. उसकी बोली आज तक याद है. आसामी मंगल सिंह को गांव-घर की बोली में चेतावनी दी थी. लगा था, ठीक पंचानंद झा बोल रहे हों, "एहन अनर्गल कुकर्म? हम औरतों पर कोई ज़ोर-जुल्म बर्दाश्त नहीं. . . . . ."

जाहिद अली अपढ़ था, लेकिन अंग्रेजी, बंगला, नेपाली और मारवाड़ी बोलियों को सुनकर मतलब समझ लेता था.

जाहिद अली के बारे में बहुत सारी बातें कानों-कान कही-सुनी जाती हैं. बहुत लोगों का कहना है कि जाहिद अली मैथिल ब्राह्मण ही था—किसी 'बाईजी' के पीछे फिदा होकर मुसलमान हो गया. कुछ लोगों का मत है कि वह हरिपुर कोठी के साहब का बच्चा था, जिसे एक मुसलमान फकीर ने पाल-पोसकर बड़ा किया.

जो भी हो, मोतीटप्पू तथा आसपास की सामाजिक ज़िंदगी पर पिछले आठ साल से इस आदमी की अमिट छाप पड़ी है. इन गांवों में एक भी घर ऐसा नहीं, जहां कोई-न-कोई अवैध काम नहीं

होता हो. एक भी आदमी ऐसा नहीं जो ग़ैर-कानूनी काम में मशगूल नहीं हो. कुछ काम तो ऐसे हैं जिसमें कानूनी-ग़ैर-कानूनी का सवाल यहां के लोगों के मन में कभी उठा ही नहीं.

जैसे, 'उस पार' (नेपाल) की घनी तराई से कीमती लकड़ियां, बांस काट लाना. 'इस पार' से बीड़ी के बंडल उस पार बेच आना. उस पार से गांजा लाकर गोदाम में जमा करना. लकड़ी, तंबाकू, पशुधन और गांजा के अलावा कभी-कभी लड़कियों का व्यापार कभी उस पार की, कभी एक नंबर पहाड़ की—'उढ़री' लड़कियां! 'उड़ने वाली' भगोड़ी लड़कियां! जो मोती टप्पू के टोलों में 'खप' जातीं. मोती टप्पू के मर्द के पास दो से चार तक औरतें न हों, उसे नामर्द कहा जाता था.

मेरे बाबूजी बहुत दिनों तक उस इलाके के नावल्द ही रहे. अंत में मेरी 'बड़ी मां', यानी मेरे बाबूजी की पहली स्त्री ने ही, एक कम उम्र की 'उढ़री' को पसंद करके जाहिद अली साहब को खबर भेज दी थी, "बघमारा के मुखिया (मेरे बाबूजी) ने अपने लिए एक पहाड़िन 'खवासिन' को पसंद किया है. हुकुम दिया जाये. . . . ."

कहते हैं, उस शादी में जाहिद अली खुद आये थे—कपड़े और रुपये लेकर. उनके मुसाहिब-मुखिया लोगों में मेरे बाबूजी की एक खास जगह थी.

एक ही साल के बाद मेरी मां ने अपनी ही सूरत का एक बच्चा दिया और छट्ठी की रात में ही बच्चे को छोड़कर भाग गयी—पता नहीं किधर! जाहिद अली के सिपाही चारों ओर चालीस कोस तक खोज आये, कहीं नहीं मिली. कहते हैं कि छोड़कर जाने के पहले एक बार भी उसने कहीं जाने का नाम नहीं लिया. न कभी रूठी, न कभी नखरा पसारा. सदा हंसती रहती.. . . बड़ी मां ने उसकी नकल करके बहुत बार सुनाया था, किस तरह वह बाबूजी को मैथिली मुहावरे में जवाब देती थी—"बुढ़वा रातियो नहीं खयलक चटनियां बिनुना. . . . " दाल-भात, दूध-दही के बदले वह मकई के आटे की खिचड़ी, जिसे वह अपनी भाषा में 'ढीढ़ो' कहती —प्रेम से खाती थी. मांस और 'रक्सी', यानी दारू सप्ताह में एक बार नहीं मिलने पर उसका माथा गरम हो जाता था. सो, मेरे बाबूजी और बड़ी मां ने ऐसा मौका कभी आने ही नहीं दिया. 'रक्सी' के साथ खाने के लिए वह अपने ढंग से मांस पकाती. बड़ी मां, बाबूजी और पास-पड़ोस के लोग नाक पर कपड़ा रखकर इधर-उधर खिसक जाते और कहते— 'पहाड़िन अपना 'चाट-चखना' तैयार कर रही है. तैयार कर रही है, अर्थात् लकड़ी की आग पर 'झुलसा' रही है.' मछली के बदले 'सुंगठी' (सूखी मछलियां) के लिए जान देती थी. आम छूती भी नहीं थी और रात को जामुन के पेड़ पर चढ़कर 'खोंइछा' भर जामुन तोड़ लाती थी.

बड़ी मां के मुंह से अपनी मां की सैकड़ों कहानियां मैंने सुनी हैं.

यों हमारे टोले में 'थारू' और 'कोंच' लोग थे, जिनकी नाक चिपटी होती है. भौंह, पलक और दाढ़ी-मूंछ के नाम पर सुनहले-भूरे थोड़े-से बाल होते हैं. किंतु मेरी चिपटी नाक की बात और थी.

बड़ी मां ने प्यार से मेरा नाम रखा था—रामरतन. मगर, गांव के लोगों ने 'बच्चा-किरवा' कहना शुरू किया तो यही चालू हो गया. किरवा, अर्थात् किरात, जो कभी-कभी पीठ पर डोकों में पतरस, नारंगी, चिरायता तथा अन्य जड़ी-बूटियां लेकर दल बांधकर गांव में आते थे. उस दिन सभी मुझे चिढ़ाते—"रे, किरवा रे! चल देख, तेरे नाना और मामा लोग आये हैं."

मेरी मां मुझे छोड़कर किधर गयी, यह किसी ने नहीं देखा. लेकिन मां की बात छिड़ते ही मेरा मुंह उत्तर की ओर हो जाता. नीले रंग के पहाड़ की चोटियों पर चमकते हुए सोने-चांदी के सैकड़ों गुंबज. . . ! मेरी मां की देह पर सब मिलाकर दस भर सोने और पचीस भर चांदी के जेवर थे. एक सूत भी अपने साथ नहीं ले गयी. पिटारी से अपना 'चोलो फरिया' (पूरे बांह का कुर्ता और साड़ी जो पहनकर आयी थी) निकालकर पिछवाड़े में जाकर पहना और नयी साड़ी केले के पौधे पर रख कर न जाने किधर. . . कहां. .?

'न जाने किधर' कहने के बावजूद बड़ी मां का विश्वास था कि वह उत्तर की ओर, अर्थात् अपने देश नेपाल की ओर ही गयी होगी. इसीलिए बचपन से ही मैं अपने गांव के अन्य बच्चों की तरह कभी 'गंगामुखी' नहीं हो सका. हमारे गांव में बच्चों को एक 'फिकरा' सुनाकर दिशा-ज्ञान कराया जाता था:

पूरुब देखे सूरजमुखी
दक्खिन गंगामुखी
उत्तर ताके भैया पहाड़
पच्छिम कोशी माई. . .

मेरा विश्वास है, बड़ी मां के बदले यदि मेरे बाबूजी की मृत्यु होती, तो मैं कुछ और होता. जो भी होता,मगर 'दसगज्जा कछार का सरदार' नहीं होता. यों दसगज्जा कछार का सरदार सिर्फ तुक मिलाने को कह दिया. क्योंकि 'सरदारी' की बात यदि ली जाये तो सरदारी सिर्फ दसगज्जा के इस पार या उस पार तक ही नहीं–विराट नगर, धरान, धनकुट्टा, काठमांडू के अलावा कलकत्ता, बंबई, और सिंगापुर तक की है. सारी दुनिया छोड़कर अंत में फिर उसी दसगज्जा के कछार पर मरने के लिए आना पड़ेगा, मैंने इसकी कल्पना भी नहीं की थी. आज तक मेरे कानों के पास रह-रहकर जाहिद अली के अंतिम वाक्य गूंज जाते हैं–'कोई कहीं भी जाये, मोती टप्पू की मिट्टी पर पैदा होने वाला मोती टप्पू की मिट्टी पर ही मरता है.'

बड़ी मां यदि जीवित रहतीं तो निश्चय ही मुझे पढ़ने-लिखने नहीं देतीं. उनका विश्वास था कि पढ़ने वाला लड़का दुबला-पतला बीमार और अल्पायु होता है. सो, जब तक जीवित रहीं, मुझे खड़िया तक नहीं छूने दिया.

बड़ी मां न बीमार हुईं, न खाट पर पड़ीं. एक दिन तनिक सिरदर्द हुआ और चल बसीं. बड़ी मां की याद करके अठारह-बीस साल की उम्र तक मैं रो पड़ता था. किंतु बाद में धीरे-धीरे उनकी याद धुंधली पड़ती गयी और अब तो बहुत चेष्टा करके सिर्फ नाक में लटकते हुए सोने की 'बुलाकी' की हल्की-सी झलक मात्र .....

बहुत दिनों के बाद—करीब पैंतालीस वर्ष बाद—फिर उधर कई दिनों से बड़ी मां की याद आने लगी है.–'रामरतन राय, चरावे गाय—पानी पीये कोशी का, बंसरी बजाय–रामरतन राय...'

मां को छोड़कर और किसी ने मुझे इस नाम से नहीं पुकारा. बाबूजी ने भी नहीं. वह भी किरवा, पहाड़िया, परबतिया कहते. हां, एक व्यक्ति और, जाहिद अली भी मुझे रामरतन कहते थे.

बड़ी मां की मृत्यु के कुछ महीने बाद से ही मैं गाय चराने के लिए जंगलों में जाने लगा. अपने गांव के चरवाहों के अलावा दूसरे इलाके के चरवाहे भी मेरी कम उम्र पर मुझे चिढ़ाया करते—'बाप करे सरदारी–बेटा चरवाही'.

कहते हैं, उड़ती हुई चिड़िया की बोली को भी जाहिद अली परखते थे और मोती टप्पू के चारों ओर दस कोस में भी कोई उनके संबंध में फिसफिसा कर भी कुछ बोले, तो बात उनके कान तक पहुंच जाती थी. बाप करे जाहिद अली की सरदारी–बेटा करे चरवाही!

जाहिद अली ने बाबूजी को बुलाकर कहा था,"क्या नाम है तुम्हारे बेटे का?—अरे, किरवा नहीं, रामरतन कहो! तुम अपनी गायों को चराने के लिए कोई चरवाहा रख लो. रामरतन मार्टिनगंज स्कूल में पढ़ने जायेगा. अपने चरवाहों का खर्चा तुम देना, तेरे बेटे की पढ़ाई का खर्चा मैं दूंगा. जहां तक पढ़ सके."

सारे मोती टप्पू इलाके में मैं पहला बालक था जिसे जाहिद अली ने पढ़ने का हुक्म गर्व-सहित दिया था. गांव के अन्य लड़कों ने, चरवाहों ने, इस हुक्म के बाद मुझे दयाभरी दृष्टि से देखा था, मानो आजीवन कारावास की सजा पाये हुए कैदी को देख रहे हों और पढ़ाई मेरे लिए सचमुच.....

सुना है, पश्चिम में कई खूंखार और भयानक असामाजिक अपराधी जेलों की कालकोठरी में बैठकर, अपने अनुभवों की कहानियां लिखकर प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं. मैं अब तक किसी अपराध में पकड़ा नहीं गया हूं और न जेल की कालकोठरी में बैठकर यह सब लिख रहा हूं. और लिख क्यों रहा हूं, यह भी ठीक-ठीक नहीं बता सकता. जाहिद अली ने मेरे पढ़ने-लिखने की व्यवस्था करके मुझे आजीवन सजा दी. यह सब लिखकर मैं स्वयं को सजा देने जा रहा हूं शायद. नहीं, मैं अपने बारे में कुछ नहीं लिख रहा. असल में मैं इस दसगज्जा, यानी नो मेन्स लैंड के बारे में, दसगज्जा के 'इस पार' और 'उस पार' के बारे में कह रहा था. बहुत दिनों के बाद मोती टप्पू के पास मार्टिनगंज स्कूल के शिक्षक अथवा चपरासी जो भी मेरे गांव का नाम सुनता,उसके चेहरे का रंग कुछ क्षण के लिए सफेद हो जाता. फिर, मेरी सूरत को कुछ देर तक एकटक देखकर अचरज से अपने-आप पूछते," मोती टप्पू में पहाड़ी लोग भी हैं?"

बंगाली हेडमास्टर साहब ने बंगला में ही कहा था,"नाम रामरोतोन, गार्जियन जाहिद अली, चेहरा परबतिया, तुमी तो एकटा रोतन बाबा....." ठीक उसी समय जाहिद अली ने मुस्कराते हुए दफ्तर में प्रवेश किया था, "रतन को जौहरी परखता ही नहीं, उसको तराशकर और भी कीमती बना देता है."

हेडमास्टर साहब ही नहीं, दफ्तर में बैठे अन्य शिक्षक भी कुर्सी छोड़कर उठ खड़े हुए थे– ऐसा भव्य था जाहिद अली का व्यक्तित्व! मेरी नाम लिखाई की फीस के अलावा जाहिद अली ने स्कूल को एक सौ एक रुपये का चंदा दिया था. किंतु मोती टप्पू के सरदार के पुत्र को कभी 'देसवाली' नहीं समझा गया. यहां उसका नया नाम पड़ा—नेपाली! नेपलिया!

कुछ ही दिनों में मार्टिनगंज कस्बे का हर आदमी यह जान गया कि मेरी मां नेपालिन और बाप देसवाली और गार्जियन मुसलमान है. पता नहीं, मेरी सूरत में क्या था कि लोग मुझे ठिठककर देखने लगते. कभी-कभी अकेले कोठरी में मैं स्वयं आइने में अपनी सूरत को देखता रहता—'क्यों? मेरा चेहरा ऐसा क्यों हुआ? मेरी भौंहों पर बाल क्यों नहीं? मेरी नाक चपटी क्यों हुई? मेरे केश सुनहले क्यों हुए? मेरा रंग हल्दी रंग का गोरा क्यों हुआ? मेरी तरह और किसी का चेहरा क्यों नहीं? .....' और एक दिन अपनी ही सूरत के एक लड़के को देखकर अंग्रेजी फर्स्ट बुक का एक वाक्य मेरे मुंह से निकल पड़ा था,"एज आई एम, सो ही इज.."

जाहिद अली ने चरवाहों की बात सुनकर मुझे चरवाहा से 'पढ़वा' बनाने के लिए स्कूल में भर्ती करवा दिया. बाद में पता नहीं फिर उनके कान में किसकी कौन-सी बात पड़ी कि मार्टिनगंज स्कूल से हटाकर सीधे उस पार नेपालगंज बाजार के राणा जंगबहादुर हाई स्कूल में दाखिल करवा दिया, जहां का अधिकांश विद्यार्थी मुझसे मिलता-जुलता था. [अपूर्ण]

बहुरूपिया

दुनिया दूषती है
हंसती है
उंगलियां उठा कहती है . . . .
कहकहे कसती है—
'राम रे राम!
क्या पहरावा है
क्या चाल-ढाल
सबड़-झबड़
आल-जाल-बाल
हाल में लिया है भेख?
जटा या केश?
जनाना-ना-मर्दाना
या जन . . . . .
अ—खा—हा—हा
            ही-ही
मर्द रे मर्द!
दूषती है दुनिया
मानो दुनिया मेरी बीवी
हो–पहरावे-ओढ़ावे
चाल-ढाल
उसकी रुचि, पसंद के अनुसार
या रुचिका
सजाया-संवारा पुतुल मात्र,
मैं
मेरा पुरुष
बहुरुपिया.

▣ फणीश्वरनाथ रेणु

रेणुजी के दो गीत

(रेणुजी की १९५८ की डायरी हमें मिली है जिसमें सिर्फ दो गीत लिखे हैं. दोनों गीत यहां प्रस्तुत हैं. साथ में इस डायरी के एक पृष्ठ की फोटो कापी भी.)

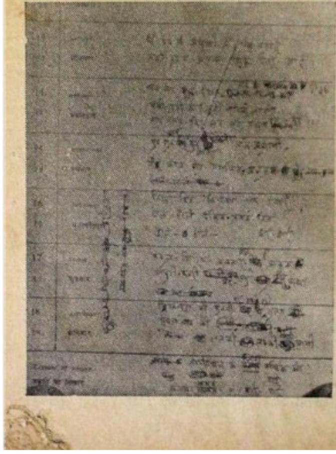

यह फागुनी हवा

यह फागुनी हवा
मेरे दर्द की दवा ले आयी. . . .ई. . . ई. . . ई
मेरे दर्द की दवा!
आंगनऽ बोले कागा
पिछवाड़े कूकती कोयलिया
मुझे दिल से दुआ देती आयी
कारी कोयलिया—या—मेरे दर्दऽ को दवा
लेके आयी–ई–दर्द की दवा! !
बन-बन, गुन-गुन
बोले भौंरा
मेरे अंग-अंग झनन
बोले मृदंग मन-मीठी मुरलिया ! यह फागुनी. . . !
मेरे दर्द की दवा ले के आयी
कारी कोयलिया!
अग-जग अंगड़ाई लेकर जागा
भागा भय-भरम का भूत
दूत नूतन युग का आया
गाता गीत नित्य नया. यह फागुनी हवा. . . . !

जागो मन के सजग पथिक ओ!

मेरे मन के आसमान में पंख पसारे
उड़ते रहते अथक पखेरू प्यारे-प्यारे !
मन का मरु मैदान तान से गूंज उठा
थकी पड़ी सोई-सूनी नदियां जागीं
तृण-तरू फिर लह-लह पल्लव दल झूम रहा
गुन-गुन स्वर में गाता आया अलि अनुरागी
यह कौन मीत अगनित अनुनय से
निस दिन किसका नाम उतारे!
हौले, हौले दखिन-पवन-नित
डोले-डोले द्वारे-द्वारे!
बकुल-शिरिष-कचनार आज हैं आकुल
माधुरी-मंजरी मंद-मधुर मुस्कायी
क्रिशनझड़ा की फुनगी पर अब रही सुलग
सेमन वन की ललकी-लहकी प्यासी आगी
जागो मन के सजग पथिक ओ!
अलस-थकन के हारे-मारे
... ...
... ...
कब से तुम्हें पुकार रहे हैं
गीत तुम्हारे इतने सारे !

1967 में रेणुजी ने छात्रों की स्थिति को लेकर यह टिप्पणी लिखी थी. आज बारह वर्ष बाद भी स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है. विश्वविद्यालय आज भी अशांत हैं. जातिवादी राजनेता आज भी विद्यार्थियों का उपयोग कर रहे हैं.

विद्या ददाति....?

उस दिन पटना लॉ कॉलिज के पास छात्रों के दो दलों में घमासान 'युद्ध' हुआ, जिसमें साइंस कॉलिज के छात्र श्री रामधारी ठाकुर खेत रहे. इस घटना पर साधारण जनता को अचरज नहीं हुआ. क्योंकि लोग जानने-बूझने लगे हैं कि गद्दी के लिए 'लड़ाई' चल रही है अविराम—राजनीतिक दलों की. और विद्यार्थी उन 'दलों' के सैनिक हैं.

किंतु इधर की घटनाओं और खासकर पटना की इस घटना से इस बात की पुष्टि हुई है कि विद्यार्थी राजनीतिक दलों से पहले अपनी-अपनी 'जाति' के सैनिक हैं. पिछले छः महीने से रांची, बिहार और पटना विश्वविद्यालय के दरवाजे खुलते और फड़फड़ाकर बंद होते रहे हैं. हर मौसम में छुट्टियों के पहले ही लंबी छुट्टियां दे देनी पड़ती हैं. इस बार भी वही हुआ. नयी सरकार ने छात्रों की मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का आश्वासन दिया. तीन महीने की फीस की माफी हुई. जिन विद्यार्थियों पर मुकद्दमे चल रहे थे और जेलों में बंद थे, उन्हें छोड़ दिया गया. इसके बावजूद विद्यार्थियों में असंतोष की यह आग सुलगती और भभकती रही. इसका एक अर्थ यह भी हो सकता है कि यह आग छुट्टियां देकर नहीं बुझायी जा सकती. पटना विश्वविद्यालय छात्रावास समिति की बैठक में भी उपकुलपति डॉ. के.के. दत्त ने छात्रावासों के अधीक्षकों एवं वार्डन को सलाह दी कि वे छात्रावास के छात्रों को शीघ्र घर चले जाने की सलाह दें. और सदा सतर्क रहें कि किसी प्रकार की अप्रिय घटना नहीं हो.

पटना का हर उत्साही नौजवान समय पड़ने पर 'विद्यार्थी' हो जाता है और पटना के हर विद्यार्थी को यह कहने का हक है कि उसने वर्तमान मुख्यमंत्री को 'विजयी' बनाने के लिए क्या-क्या न किया!

महामाया बाबू के ऐसे ही 'स्वयं सैनिकों' ने एक ऐसी 'निगरानी समिति' की स्थापना की है जो महामाया बाबू तथा उनके मंत्रिमंडल के सदस्यों को भ्रष्ट व्यक्तियों के संसर्ग से दूर रखेगी. मुख्यमंत्री विद्यार्थियों के असंतोष को दूर करने में समर्थ नहीं हो सके. कोई बात नहीं. स्नेह, प्यार, आदर, श्रद्धा, विश्वास उन्होंने खो नहीं दिये हैं. इसको जांचने का यही उपयुक्त अवसर है, जो बाद में चाहने पर भी हाथ न आये. और इन गर्मी की छुट्टियों में जिस राजनीतिक दल की ओर से 'समर स्कूल ऑव पॉलिटिक्स' जैसे शिविर के संचालक. . . और जब विद्यार्थियों के बिना राजनीतिक दलों का काम चलना नामुमकिन है तो ऐसी आकस्मिक छुट्टियों में 'समर स्कूल ऑव पॉलिटिक्स' (ग्रीष्मकालीन राजनीति का स्कूल) जैसे शिक्षा-शिविर संचालन करने की बात कोई राजनीतिक दल या व्यक्ति क्यों नहीं सोचता? या सही बात यही है कि अब छात्रों पर किसी दल का कोई प्रभाव नहीं रहा?

उस दिन ऐसे ही एक सवाल पर संयुक्त मोर्चे के एक प्रवक्ता ने एक पत्रकार से सवाल कर दिया, "और आपके संपादक, इनके (अर्थात विद्यार्थियों के) विरुद्ध कोई 'संपादकीय', कोई 'अग्रलेख' या विशेष लेख क्यों नहीं लिखते? इनको बढ़ावा क्यों देते हैं?"

पत्रकार ने धीरे-से कहा, "जरा धीरे-धीरे बोलिये. किसी ने सुन लिया तो हमारे अखबार के साथ आपकी सरकार मुर्दाबाद . . . ." □

लोकगीतों की गोद में

मैं लोकगीतों की गोद में पला हूं. इसीलिए हर मौसम में मेरे मन के कोने में उस ऋतु के लोकगीत गूंजते रहते हैं. मैं कहीं भी हूं—इन लोकगीतों की स्मृति-ध्वनियां मुझे अपने गांव में—कुछ क्षण के लिए पहुंचा देती हैं. . . . अगहन शुरू होते ही पके हुए धनखेतों की अगहनी सुगंध के लिए मन मचलता है. अलाव तापते हुए—खलिहान में दवनी को आये हुए लोगों से बातें करने की बड़ी इच्छा होती है. ढलती हुई लंबी रात, 'भूरुकवा' तारा उगते ही नींद उचट जाती है. खलिहान में दबनी शुरू हो गयी. 'प्रातकी' गीत की पहली कड़ी मंडरा रही है. पवित्र धुन—प्रातकी—जिसे अगहन से माघ तक, भुरुकवा तारा उगने के बाद गाते हैं. . . .

▣

भोर को गाये जाने वाले गीतों में प्रातकी के बाद 'बिकय' की याद आती है. श्रावणी पूर्णिमा से आरंभ करके कृष्णाष्टमी की भोर में—खोल-करताल बजाकर यह बिकय गीत गाया जाता है. काली घटाओं में लुका-छिपा चांद भादों के भरे हुए पोखर-तालाब में तैरता हुआ दिखाई पड़ता है, और फिर तुरंत ही झड़ी लग जाती है. ऐसे क्षणों में बिकय गाने वालों का मूलगैन अलाप उठता है. . .

▣

लोकगीतों में ऐसे भी गीत हैं जिनके गाने का समय वर्ष में सिर्फ एक घंटा निर्धारित है. होली और फगुआ गाने फागुन की अंतिम की घड़ियों तक होरी और फगुआ गाने के बाद, और चैत के प्रथम क्षणों में चैती शुरू करने के पहले—एक घंटा. फागुन-चैत की संधि बेला में गाये जाने वाले इस गीत को 'बसकर' कहते हैं. इस गीत में फागुन की मस्ती की हल्की खुमारी और चैती की मीठी-मीठी उदासी मिली-जुली रहती है...⌐

डायरी के अधूरे पृष्ठ

रविवार, ३ जनवरी १९६०

बाज़ार-दर

इधर पिछले कई वर्षों से 'आंचलिक' मालों का बाजार गर्म है. ताड़-खजूर छाप माल असली है या नकली, पता लगाने वाले पारखियों के व्यक्तिगत विचारों का बाजार भी काफी सस्ता है. पुरस्कार, सर्टिफिकेट और तमगों के 'फोटोस्टेट' के साथ विज्ञापन-प्रचार करने वाले, प्रस्तुतकर्त्ताओं की बातों से नहीं, फुसलने वाले लोग भी रहते हैं, और बहस कीजिए तो हर माल वाले यही कहते हैं कि उनका माल ही असली है. उपभोक्ताओं को पता नहीं—इस आंचलिक नामक नये माल का आफ्टर-इफेक्ट क्या होगा. इस नयी चीज में विष की मात्रा कितनी है, किसी को नहीं मालूम. उसी के बाद यह भी कहा जाता है—यह बिल्कुल ही नयी चीज नहीं हिंदी के बाजार में. कई पीढ़ी पुरानी चीज है, जिसमें कुछ कूड़ा मिलाकर, इधर 'आंचलिक' नाम से मशहूर करने की कुचेष्टा की गयी है. अगल-बगल (अंग्ल-बंगल) की भाषा के बाजारों का कुप्रभाव भी कम नहीं पड़ा है. बंगाल के वीरभूम और बिहार के पूर्णिया जिले की मिट्टी में संभवतः आंचलिक साहित्य पैदा करने की ताकत अधिक मात्रा में है. बंगला का सर्वप्रथम आंचलिक लेखक शैलजानंद, सर्वश्रेष्ठ लेखक ताराशंकर—दोनों वीरभूम के. उस समय का बंगला-साहित्य-बाजार-गजट की पुरानी फाइलों को पढ़कर देखा, तो पाया कि श्री शैलजानंद को अपराधी साबित करने के लिए जो-जो दलीलें पेश की गयी थीं, वही सब दलीलें हिंदी में भी प्रस्तुत की जा रही हैं. शैलजानंद की प्रथम रचना का एकांत-अभिनंदन करने वाले शरत्चंद्र ने भी अंततः लिखित एतराज प्रकट कर दिया और शैलजाबाबू का साथ छोड़ दिया. तो —(बकलम-बकौल शैलजानंद के) शैलजा बाबू का कलेजा बैठ गया और वे लेखनी को गंगा में बहाने का फैसला कर कोयले के व्यापार में लगने की तैयारी करने लगे थे. कि ठीक जापान जाते हुए सागर के वक्षस्थल पर बैठकर विश्वकवि ने पत्र लिखा — (शैलजा बाबू ने अपनी स्मृति-रचना में उद्धृत कर पिछले साल प्रकाशित करवाया है)—उसका भावार्थ कि आंचलिक शब्दों की ऐसी चाट लगी है कि अपनी रसोई में भी मैं यह. . . .

शैलजा बाबू का कथन है कि इसके बाद ही गुरुदेव की भाषा पर आंचलिकता का स्पष्ट प्रभाव कोई देख सकता है. शैलजाबाबू की बंद होती हुई धुकधुकी फिर तेज हुई और आज तक सही चल रही है, इसका यह कारण है कि उनके बाद ताराशंकर बंद्योपाध्याय ने उनके सुर में सुर मिलाकर और भी स्पष्ट स्वर में नारा बुलंद किया—वीरभूम जिंदाबाद! आंचलिक माल जिंदाबाद!

दुर्गत ताराशंकर की कम हुई हो, ऐसी बात नहीं है. ताराशंकर बंद्योपाध्याय के 'आमार साहित्य जीवन' के प्रारंभिक अध्याय के कई पृष्ठों का अनुवाद यहां प्रस्तुत किया जा रहा है. मूल घटना का सारांश पहले बता देना जरूरी है. तारा बाबू असहयोग आंदोलन के सिलसिले में 1930 में निकले—जेल में ही उन्होंने दो उपन्यासों...... (अधूरा पृष्ठ)

रेणु जी की डायरी के ये पृष्ठ लगभग अधूरे ही हमें मिले हैं. इनके अधूरे रहने का कारण संभवतः यह रहा होगा कि यहां तक लिखने के बाद रेणुजी ने उसे पूर्ण करना जरूरी न समझा हो. कुछ भी हो, इनसे रेणुजी के चिंतन के एक और आयाम का परिचय हमें मिलता है.

सोमवार, ४ अप्रैल १९६०

बाइ-वीकली बंबई मेल !

यह दूसरा खेप है—बंबई से वापस जा रहा हूं. इस बार भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके लौट रहा हूं. जो काम नहीं करने की प्रतिज्ञा की थी—इस बार भी नहीं किया वह सब. जो कार्यावली पूरी करने की प्रतिज्ञा की थी, इस बार भी नहीं कर पाया. यह और बात है. . .

गाड़ी वी.टी. [अपने 'आंचलिक' पाठकों के लिए 'पाद टीका' देना आवश्यक है. . पादटीका की भी पादटीका?], तो, गाड़ी विक्टोरिया टर्मिनस छोड़ने की पूरी तैयारी कर रही है. गाड़ी के अंदर और बाहर प्लेटफार्म पर खच्चमखच्च भीड़. निर्देशक, सह प्रोड्यूसर और प्रोडक्शन मैनेजर मिलजुलकर प्लेटफार्म पर साहस बंधा रहे हैं. जो कुछ भी कह रहे हैं, उसका सारांश यह कि मैं दारासिंह हूं, किगकांग हूं, मैं अकरम हूं—इस भीड़ को धकमपेल और 'उड़नचोट' प्रहार करने के काबिल हूं.

बहुत मुश्किल से अंदर से गर्दन निकालकर एक चरित्र-अभिनेता—मेरा सहयात्री—कह रहा है, 'फणिदा' आसून . . ऊपर बर्थ पर बिस्तर बिछा दिया है. नीचे के दो सहयात्री इलाहाबाद में उतर जायेंगे. सीट खाली होये जावे, . . . तब तक मैं बैठा ही. . ." हंसी आयी. इलाहाबाद में उतर जायेंगे का अर्थ है—कल रात में साढ़े बारह बजे! साढ़े छब्बीस घंटे बाद मिलने वाली आराम-देह जगह के सुख का लोभ!

मन ने धिक्कार-पर-धिक्कार देना शुरू किया—यात्रा की कठिनाइयों से डरता है? तू इन हजारों लोगों से अपने को क्यों भिन्न मानता है? क्या तू 'जनता' नाम से ही चिढ़ने वाला तो नहीं है? क्या तू जनता नहीं?

डायरेक्टर बासुदेव भट्टाचार्य, सह-निर्माता संतोष ठाकुर और प्रोडक्शन मैनेजर मृणाल चक्रवर्ती! सभी को थोड़ा-बहुत जान-पहचान चुका हूं. सभी कमो-बेश संघर्ष (स्ट्रगल) कर चुके हैं, कर रहे हैं. चरित्र-अभिनेता अमल, जो मेरे साथ अपने घर पटना लौट रहा है, हर बात पर गर्व के साथ यह बात सुना चुका है—"दादा, आठ साल होये गेछे. . . स्ट्रगल कर रहा हूं. करूंगा. . ."

खार से वी.टी. तक प्रोडक्शन मैनेजर मृणाल चक्रवर्ती के सुरीले स्वभाव का परिचय मिला है. शास्त्रीय बोल के बाद स्वरचित शब्दों के द्वारा तेज रफ्तार से भागती मोटर की गति के साथ तालमेल रखकर तरह-तरह के म्यूजिक उसके मुंह से सुन चुका हूं. कभी रविशंकर के

मृत्यु के कुछ समय पूर्व रेणुजी के व्यवहार में काफी परिवर्त्तन हो गया था. अक्सर वे काफी देर तक गुमसुम रहते. कोई भी कागज उठा कर उस पर यों ही कुछ लाइनें लिख देते हैं. इसी प्रकार के एक कागज की फोटो कापी नीचे दी जा रही है. इससे उनकी उस समय की मनःस्थिति का सहज ही आभास हो जाता है.

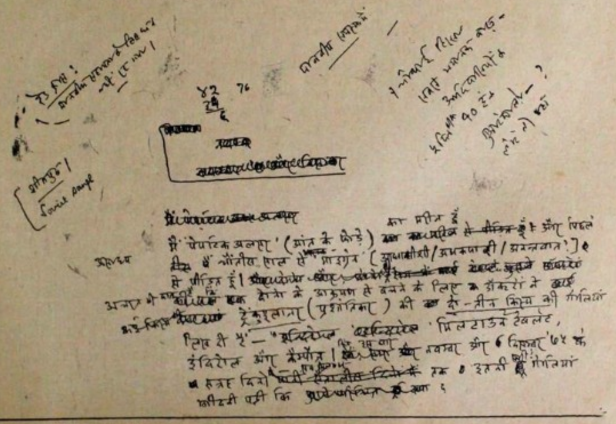

सितार का झंकार—अली अकबरखां की ठुमरी में जगह-जगह लगने वाले कीर्तन के सुर—सभी स्पष्ट झंकृत होती रही हैं. मृणाल चक्रवर्ती का कहना है—बाबा! मैंने प्रोडक्शन मैनेजर की हैसियत से स्ट्रगल नहीं किया तो क्या हुआ! हर काम में एक सुर है. मुझे एक बार पकड़ने का मौका तो दीजिए, फिर उस सुर को . . म्युजिक-डायरेक्शन नहीं—प्रोडक्शन मैनेजरी सही. . . हम 'इमेज मेकर्स' हैं. हम सभी.

'यंग बासु' [बासुदेव चटर्जी क्षमा करें : अंग्रेजी की एक प्रसिद्ध सिने-पत्रिका का शब्द उधार ले रहा हूं] तो, 'यंग बासु' को गर्व है, उसकी यूनिट में एक-से-एक संघर्षरत, कर्मशील तथा सफल लोग हैं.

जब इतने संघर्षरत लोग कहते हैं कि यात्रा सुखकर होगी, तो जरूर होगी. . मैं दारासिंह हूं, मैं किंगकांग हूं, मैं अकरम हूं. जाप करता हुआ गाड़ी में घुसा. प्रोडक्शन मैनेजर मेरी खाली सुराही लेकर बहुत दूर, नल पर जाकर भर लाये हैं—पानी! अंदर पंखा नहीं चल रहा है. डिब्बे में सभी यात्री अगले किसी बड़े स्टेशन पर इन नहीं चलने वाले पंखों को मरम्मत करवाने की बात दुहरा चुके हैं. तो, सोलह घंटे बाद ये पंखे भी चलने लगेंगे. हवा मिल जायेगी. बासु की दी दियासलाई सहित सिगरेट की डिब्बियां साथ हैं. आग-पानी-हवा से लैस [ऊंह! लगता है, अंतरिक्ष की यात्रा से लौट रहा होऊं!]—

गाड़ी चली—मेरी दूसरी खेप की वापसी-यात्रा शुरू हुई. बंबई-हावड़ा बाई वीकली जनता एक्सप्रेस बंबई से कलकत्ता तक की दौड़ पर निकली. यदि इस बार भी कानिक लिखित 'कश्मीर प्रिंसेस' पुस्तक नहीं पढ़ने को मिलती तो हवाई जहाज ही से लौटता. किंतु उस किताब को पढ़ने के बाद लगातार चार दिनों तक इतने भयानक सपने आते रहे कि एक सप्ताह तक अच्छी नींद नहीं आयी. इसका यह मतलब कदापि नहीं कि मैं हवाई-यात्रा से सदा-सर्वदा के लिए घबड़ा गया हूं.

यह दूसरा खेप है. इस बार भी अपनी इच्छा पूरी करके जा रहा हूं. समुद्र में आया, समुद्र पर पैर नहीं रखा. . . इस बार भी कुछ लोग पूछेंगे—एलिफेंटा नहीं गये? कहूंगा—मैं एलिफेंटा देखने तो नहीं गया था भाईजान!

जलगांव में भोर की चाय पीते वक्त एक माह पूर्व की दुर्घटना की याद जल उठी धधककर! गरम चाय!

अमल ने विहंसकर कहा "नीचे के एक सज्जन खंडवा में उतर रहे हैं."

(अधूरा पृष्ठ)

दो पृष्ठ ये भी

शुक्रवार, १७ जून १९६६

वह क्या चीज है जिसे त्रिलोचन में जोड़ दें तो वह शमशेर हो जाता है और ऐसी क्या चीज है जिसे त्रिलोचन से घटा दिया जाये तो वह नागार्जुन हो जाता है—जब भी त्रिलोचन जी को देखता हूं, यही एक शुभकरीय प्रश्न मेरे मन में सदा उदित हुआ है.

मुझे यह कबूल करने में कभी लाज-शर्म नहीं आयी कि मैं कविता नहीं समझता. मेरे लिए कविता समझने की चीज कभी नहीं रही. इसीलिए अपने मन में उठने वाले इस सवाल का जवाब—शमशेर-त्रिलोचन-नागार्जुन की कविताओं में मैं कभी नहीं ढूंढ़ता.

सोमवार ६ फरवरी, १९६७

मैं ऐसी तीन पढ़ी-लिखी लड़कियों को जानता हूं जिनकी शादियों के निमंत्रणपत्र छपकर वितरित हो चुके थे, किंतु शादियां नहीं हुई.

पहली, वीरा मित्रा (LHV), दूसरी, मिस मुखर्जी (MBBS), तीसरी, रामबाला (M A. Dip-in-Ed.)

वीरा—क्रिश्चियन
मुखर्जी—बंगाली ब्राह्मण
रामबाला—बिहारी.

शुक्रवार, १ मार्च १९६६

जसोधा प्रसाद

. . . . नहीं, यह मेरी 'कही' या 'गढ़ी' कहानी नहीं! यानी, मैं इसका लेखक नहीं!

उत्तरी बिहार के एकदम उत्तरी छोर पर—नेपाल की सीमा के— दसगज्जा, यानी नौ मेन्स लैंड—उस पार नेपाल में वीरगंज, विराटनगर झापा—फिलो-मलिया अथवा इस पार भारत में बीरपुर. बथनाहा, फारबिसगंज की ओर आपको कभी जाना पड़े और (जसोधा प्रसाद) नामक किसी व्यक्ति से मुलाकात हो जाये और आपसे उसकी चार घड़ी की भी दोस्ती हो जाये, तो मेरा विश्वास है कि वह आपको ऐसे ही किस्से, ठीक इसी लहजे में सुनायेगा! . . . यह बात ठीक है कि मेरा नाम लेने पर वह आपका गहरा मित्र हो जायेगा और तरह-तरह की प्यारी गालियों से मुझे याद करेगा और गप्प में लीन हो जायेगा.

पिछले आठ-दस वर्षों से मैं स्वयं उसके पीछे हूं. वह मुझे कभी मिला नहीं. कभी सुनता हूं, उसने भारत-नेपाल की सीमा पर इस—पार भारत में—एक बड़ी-सी टिंबर कंपनी खोल ली है. कभी पता चला—वह उस पार (नेपाल में) चतरा गद्दी में कोशी प्रोजेक्ट का कंट्रैक्टर है. . . विराट नगर में 'मधुशाला' नामक बार चला रहा है. . . बराह क्षेत्र के पास एक गुफा में 'साधना' कर रहा है. . . तीन बीवियां हैं उसकी. . . आदि. लेकिन उससे जो भी, जहां कहीं भी मिला है, उसने ऐसी ही कहानियां, इसी शैली में सुनायी हैं.

याद कीजिए, आपसे उसकी मुलाकात और दोस्ती भी हो गयी है और वह आपको किस्सा सुना रहा है: "ए भाय! यह जो चारों ओर पांच कोस हजारों-हजार छलामल सतरंगा बिजली देखते हैं न—यहां चालीस-पचास साल पहले राज-महाराज बाघ का शिकार करने के लिए आते थे. . . वह जो 'वर्गीज होटल' है न, दसगज्जा के किनारे— वहां तक घनी तराई थी. . .उस पार मोगलान में. . ."

पिछले पन्द्रह-बीस वर्षों से हमारे इलाके—उत्तर-बिहार के कोसी कवलित अंचल में एक नयी जिंदगी आ रही है. हरियाली फैल रही है—फैलती जा रही है 'बलूचरों' पर. बंजर-धूसर पर रोज-रोज हरे-पीले और धानी रंग के मोटे ब्रश से पोते जा रहे हैं. . . .लरमा, रोजो, सोनरा गेहूं, ताइचुंग, एइट धान, संकर मक्के के अलावा पुराने किस्म के देशी अगहनी और गमई धान की खेती में हर साल बढ़ोत्तरी हो रही है. अब यहां लोगों को 'परतीत' होने लगा है कि कुछ ही दिनों में बीरान धरती का चप्पा-चप्पा 'गुलजार' हो जायेगा.

कई नये नगर, नये गांव, नयी कॉलोनी और कस्बे बस गये हैं. . . एक किसान ने सिर्फ दो साल ताइचुंग उपजाकर एक पोख्ता मकान बनवा लिया. चूंकि उसका नाम 'प्रगतिशील किसानों' में दर्ज था, इसलिए कोसी प्रोजेक्ट के अफसर उसके घर पर आते-जाते थे. किसी ने सलाह दी—घर का नाम रख दीजिए—ताइचुंग हाऊस. संशोधन के साथ यह नाम स्वीकृत हो गया— ताइचुंग भवन. इसके बाद उस किसान के लड़के ने, शहर के स्कूल में दसवें दर्जे में पढ़ता है, अपने नाम में जोड़ दिया— ताइचुंगवाला. शिवकुमार दास ताइचुंगवाला.

सोमवार, ११ जनवरी, १९७७

आज पौष पूर्णिमा है. अपने गांव की बोली में 'पूसी पूरनिमा'. मिरजापुर-कोठी मेला की याद! खवासपुर मेले की याद आती है और याद आता है बचपन में एक 'पूसी' पूरनिमा' को गुड़ खिचड़ी खाकर दोपहर को खलिहान में, धान बोझों पर मरियल धूप में लेटा रहा और जड़ैया बुखार अचानक चढ़ आया. तब से गुड़सियड़ी या रसिया रकुसियार के रस में बनी खिचड़ी कभी नहीं खायी. याद करता हूं तो हर वर्ष का यह दिन —बादलों की मीनी सफेद चदरी में ढंका-ढंका याद आता है. . . बंगला, यानी बंगाल का प्रसिद्ध पर्व—पौष पार्वन— आज के दिन ही होता है—पिठे-फुली खाने का दिन. पिठे यानी 'पिठ्ठी' दसपिढी, गुड़पिठ्ठी, हमारे गांव की ओर भी खाते हैं लोग! □

सन् १९६५, उतराई!

हजारीबाग कांग्रेस सम्मेलन पर रेणुजी की कुछ चुटकियां

छोटा नागपुर की सड़कों के बारे में बोलते समय हर बिहारी, कवि बिहारीलाल बन जाता है, और 'अमिय हलाहल रस भरे' बैन बोलने लगता है—वह भाड़े की गाड़ी का चालक ही क्यों न हो!

ट्रक की पिछली पट्टी पर 'फिर मिलेंगे' लिखने वाला कोई दिलदार जरूर रहा होगा. मगर मोटर-चालकों के स्वर्ग—छोटा नागपुर पहाड़ियों की घाटियां—में जरा-सी चूक पर स्वर्गधाम सवार-सहित गाड़ी के दरवाजे पर जोर का धक्का मार सकती हैं. मगर हजारीबाग आते-जाते समय हर दिल वाले ड्राइवर का दिल 'घाटियों के घुमाव' के पहले ही एक बार अवश्य डोल जाता है—'सावधान ! सामने तीखे मोड़ हैं—बहुत-से तीखे मोड़ हैं.'

हजारीबाग कांग्रेस राजनीतिक सम्मेलन की समाप्ति के बाद बिहार के प्रत्येक राजनीतिक दल के लोग यह अनुभव करने लगे हैं कि सामने घुमावदार रास्ता है और उनके दिल में एक 'हौल दिल' समा गया है. सभी सतर्कता पूर्वक गर्दन तानकर अपनी-अपनी गाड़ी चला रहे हैं. 'उतराई' पर यों ही रगों में तनाव आ जाता है. देह में गुदगुदी लगने लगती है. अनुभवी लोगों का कहना है कि रामगढ़ कांग्रेस के बाद भी ऐसा ही हुआ था—घुमावदार घाटियों से निकलकर अलग-अलग रास्ते!

बिहार प्रदेश कांग्रेस के प्रमुख पदाधिकारी ने हजारीबाग से 'डेरा-डंडा' तोड़ने के पहले स्थानीय निवासियों से 'कहा-सुना, भूल-चूक, लेनी-देनी' माफ करवा कर, चेहरे पर प्रसन्नता के मुखौटे लगाकर पटना लौट रहे हैं. भारतीय दल द्वारा एवरेस्ट-विजय-संवाद को वे 'छोटा नागपुर विजय' का शुभ-संकेत कह रहे हैं. किंतु असंतुष्ट और 'मिलिटेंट' कांग्रेसियों ने इस 'चला-चली' की बेला में भी चिल्ला कर कह दिया है—'सावधान! बिहार कांग्रेस की गाड़ी जहन्नुम की ओर चली!'

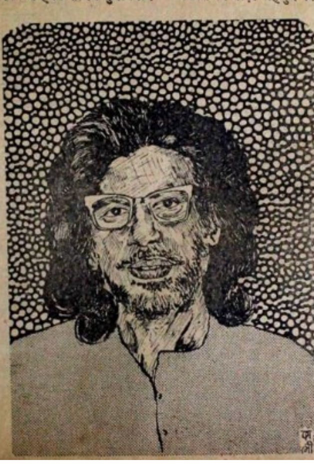

आपात् स्थिति के दौरान रेणु

इस सम्मेलन के द्वारा 'जयपाल-रामगढ़' को मुंहतोड़ जवाब देने वाले मंत्रिमंडलीय-गुट के लोगों ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार 'जयपाल-रामगढ़' को मुंहतोड़ उत्तर दिया है इस सम्मेलन के द्वारा. 'जयपाल रामगढ़' मिलकर कहर ढायें, यह मिथ्या-भय उनके दिल में नहीं. संयुक्त समाजवादियों का विश्वास इस सम्मेलन के बाद और भी दृढ़ हो गया है कि अब झारखंड-वनवासियों के दिल आसानी से जीत जा सकते हैं. कोने-कोने से कांग्रेस-राज को दूर करने को कटिबद्ध लोगों ने बिहार के नक्शे पर छोटा नागपुर को लाल पेंसिल से घेर दिया है. नील-उत्ताल तरंगों की तरह फैली इन पहाड़ियों में सारी शक्ति लगा देने की कसम वे खा चुके हैं.

'झारखंड और जनता पार्टी का पुनर्जन्म हो गया है'—यह अफवाह नहीं !

सफल मनोरथ!

प्रबंधकों ने जैसा चाहा था, भीड़ उससे बढ़कर उमड़ी. तीन, साढ़े तीन लाख लोगों ने इंदिरा गांधी का दर्शन किया, भाषण सुना. तीन, साढ़े तीन लाख लोगों ने पड़ोसी राज्य की महिला मुख्यमंत्री को देखा. फिर अपने राज्य के मुख्यमंत्री को भारत के प्रधानमंत्री और कांग्रेस के अध्यक्ष में पूर्ण विश्वास प्रकट करते हुए 'बढ़ती हुई कीमतों और खाद्य-संकट से लड़ने' का पुरुष-संकल्प लेते देखा. हजारीबाग की पथरीली धरती अपने सफल-मनोरथ-सपूत कृष्णवल्लभ सहाय पर कई दिनों तक इतरायी. तमाशा खत्म होने के बाद हजारीबाग के निवासियों ने एक 'महा-वन-भोज' के सिवा और कुछ नहीं समझा.

बालिग लोग

हजारीबाग सम्मेलन में उत्तर-प्रदेश और आसाम के मंत्रियों की उपस्थिति ने बंगाल के राजनेताओं की संपूर्ण अनुपस्थिति को अधिक उजागर कर दिया. पिछले कई वर्षों से कांग्रेस के 'भीतरी झगड़ों' की पंचायतों में बंगाल के सदैव नील-उपनेत्रधारी-समदर्शी, खेलकूद प्रिय-नेता पंच मुकर्रर होकर बिहार आते रहे हैं और हर बार बिहार के कुछ प्रमुख कांग्रेसियों को उनकी कुछ मुद्राओं से ठेस लगी कि उन्हें अतुल्य घोषादि अब तक नाबालिग राजनीतिक समझते हैं. कांग्रेस हाई कमान को अब निश्चय ही विश्वास हो गया होगा कि बिहार के हर छोटे-बड़े मामलों में 'पंच' नियुक्त करते समय तनिक सोच-विचार लें कि उस व्यक्ति को बिहार से सच्ची सहानुभति है या नहीं.

पंडितजी की एक झलक

उमड़ती हुई भीड़ को देखकर इस बार इंदिरा गांधी के चेहरे पर भी वही पैतृक दमक खेल गयी क्षण भर के लिए. जन-समुद्र में उठती लहरों पर अन्यथा शासन और रौब गालिब करने वाले प्रदेश के एक प्रमुख कांग्रेसी को उन्होंने ऐसे ही क्षण ठेल कर एक ओर करते हुए कहा—'आप उन्हें क्यों रोक रहे हैं? पहले आप चुप होइये, लोग खुद शांत हो जायेंगे. आप बेवजह. . . . . .'

ऐसी सभाओं में पंडित नेहरू पहले स्वयं सेवकों को अपनी-अपनी जगह पर बैठ जाने के हुक्म देते थे. ▣

२४ फरवरी १९६० (बुधवार)

सुबह-सुबह वर्षा—
मन हर्षा
सूरज सिर्फ दो घंटे
टिका—किंतु प्रचंड रूप से.
फिर बदली उमस
हवा गुम्म!
सावन की पुरवैया
या पछवैया—क्या चले
क्या चले?
हठात पछिया हवा का
एक झोंका
आया—नारियल-सुपारी-बांस
की फुनगियों पर
रुकी-थमी हवा हरहराती—
तोते का बच्चा टॉय-टॉय
कर रोता उड़ता
फिरता!
पाट-धान के हरे-भरे
डेढ़ सेर चावल
घर में हैं, पिछवाड़े में कद्दू
. . . आज कोई काम नहीं होगा. . .
मछलियों के शिकार के सिवा.
मालिक! आज माफ करो
घरवाली का पैर भारी है
मछली खाने को जी हुआ है.
. . . . जी, जी!
बाबा रामचंदर
भगवान थे
हम दास हैं, सेवक हैं
हमारी स्त्रियां सोने के हिरण
की खाल खिंचवाकर
नहीं मंगवायेंगी.
दो-जीवा है
बेचारी के मन में
मछली भात खाने की साध है.
डेढ़ सेर चावल घर में हैं,
पिछवाड़े में कद्दू!

▣ फणीश्वरनाथ रेणु

'मैला आंचल' के कारण मानहानि का मुकदमा और रेणु का एक पत्र!

▣ डा. कमलकिशोर गोयनका

['मैला आंचल' के प्रकाशन ने जहां रेणु जी को अपार ख्याति दी थी वहां कुछ लोगों ने उपन्यास के कुछ पात्रों में अपने प्रतिबिंब देखे और उस आधार पर रेणु जी को परेशान करना चाहा. यहां प्रस्तुत है उन परेशानियों का एक जीवंत दस्तावेज रेणु जी के एक पत्र के माध्यम से.]

'मैला आंचल' का प्रकाशन सन् 1954 में हुआ. यह रेणु का पहला उपन्यास था. एक नये उभरने वाले लेखक को अपनी प्रथम कृति के प्रकाशन में जो तकलीफें उठानी पड़ती हैं, वे सब रेणु को भी उठानी पड़ीं. जैसे-तैसे 'मैला आंचल' का प्रकाशन हुआ. दो वर्ष के अंदर-अंदर रेणु के इस पहले ही उपन्यास की ख्याति देश में चारों ओर फैल गयी और वे अपनी पहली ही कृति से एक प्रसिद्ध लेखक बन गये, परंतु रेणु के गांव औराही हिंगना के निकट के एक सज्जन को यह उपन्यास रास नहीं आया. उन्हें उपन्यास के तहसीलदार में अपनी छवि नजर आयी. तत्कालीन सत्तारूढ़ पार्टी के एक स्थानीय नेता ने भी किसी पात्र में अपना प्रतिबिंब देखा. फिर क्या था. दोनों ने मिलकर रेणु को सबक सिखाने के लिए पहले बलात्कार-कांड में फंसाने की चेष्टा की परंतु कोई कुमारी-कन्या इसके लिए तैयार नहीं हुई. किसी अधेड़ स्त्री से संगीन मुकदमा बन नहीं सकता था. ऐसी स्थिति में 'हरिजन कानून' का सहारा लिया गया और सितंबर, 1956 को रेणु पर फौजदारी का मुकदमा अदालत में दायर कर दिया गया. रेणु अन्याय के सम्मुख नहीं झुके और उन्होंने मुकदमा लड़ा. इस मुकदमे की जानकारी रेणु के एक पत्र से मिलती है, जो लीडर प्रेस, इलाहाबाद के संचालक पं. वाचस्पति पाठक को 22 अक्टूबर, 1956 को लिखा गया था. रेणु के जीवन का यह अज्ञात अध्याय उनके शब्दों में इतना जीवंत एवं साकार हो गया है कि हमारे सम्मुख असली तहसीलदार और उनके साथियों, वकीलों, गवाहों तथा अदालत के विभिन्न दृश्यों के चित्र आंखों के सामने नाचने लगते हैं. यहां रेणु का वह पत्र प्रस्तुत है:—

ग्राम एंड पो. औराही हिंगना
वाया—फारबिसगंज
जिला—पूर्णिया (बिहार)
22-10-56

आदरणीय पाठकजी,

सादर प्रणाम.

पत्र लिखने में देरी हुई, क्षमा करेंगे, कानून और कचहरी के पैंतरे! भगवान बचावें, मुकदमा दिलचस्प है, इसलिए मेरी तारीख के दिन कचहरी में भीड़ लग जाती है. . .मेरे गांव के पास एक सज्जन हैं—(जिनके बारे में आपको बता चुका हूं) उन्होंने 'मैला आंचल' के तहसीलदार को अपनी तस्वीर समझ लिया है. मूरख आदमी है, पुराना मुकदमेबाज है. संभवतः उसने अपने वकील से पहले भी सलाह ली होगी. अब तक वे चुप रहे. 'संकेत' में प्रकाशित रिपोर्ताज का नाटक वाला अंश—एक गांव की सच्ची घटना है. 'दलित वर्ग' के लोगों ने समझ लिया, उनकी खिल्ली उड़ायी गयी है.

क्योंकि. . . . इनकी किताब पर 'भारत सरकार' ने पुरस्कार दिया है, इसलिए 'यह बात' दिल्ली तक जरूर पहुंच गयी होगी. फिर 'पंडित जमाहिर लाल' को भी मालूम होने में कितनी देर, छिः छिः क्या समझते होंगे पंडित जमाहिर लाल भी? दलित वर्ग के बारे में क्या समझते होंगे भला. . . . .! दलित से लेकर स्वर्ण की नकेल जिस पार्टी के हाथ में है, उसके स्थानीय नेताजी के बड़े नेता ने भी जो थाना के नेता हैं—शायद अपनी सिलहुत छवि देखी कहीं मेरी रचना में. उन्होंने जो सुना तो 'चियर अप' कर दिया. 'ठीक है, दलित वर्ग के नौजवानो बढ़ जाओ.'

तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद का भूत (!) ऐसे मौके पर चुपचाप बैठा रहे?—'खर्च की क्या बात, एक वकील मैं रख दूंगा. . . . लेकिन मामला हो जरा संगीन. रेप-टेप वाला केस हो तो सारे मुकदमे का खर्चा मेरा. . .कोई लड़की तैयार नहीं होगी? कोशिश करो. . . फिर देखो यह सारी 'लेखकी' निकल जाती है कि नहीं. सुना-पंद्रह दिनों तक चेष्टा की, लेकिन कोई कुमारी लड़की के बाप-भाई तैयार नहीं हुए. माएं तो तैयार भी हो गयीं! . . . लेकिन कुमारी लड़की ही चाहिए संगीन रेप-केस के लिए. . . . .

अंत में, 'हरिजन-कानून'—घर की मुर्गी! मुकदमे की पेशी के दिन संचालक, सूत्रधार छाते की ओट से फौजदारी कचहरी कंपाउंड के बाहर, दीवानी कचहरी के आस-पास चक्कर मारते रहते हैं. पिछली तारीख को दलित-संघ के सेक्रेटरी साहब भी कचहरी में नहीं आये, क्योंकि 'वकीलों' की टोली 'मैला आंचल' तथा अन्य रचनाओं के जीते-जागते पुतलों को उंगलियां बता-बताकर इधर-उधर चक्कर मारती है. बेवजह पान की दुकान पर खड़े एक आदमी से नाम पूछ लेते हैं—'आपका नाम? क्या आपका घर फारबिसगंज थाना है?'

'जी ! मेरा नाम. . . . . . ?'

पान खाते हुए नौजवान वकील साहब ने नाम को

चन्दन-चुम्बित रंग-रूप

गोकुल लगाइए, यौवन रचाइए. गोकुल असाधारण पाउडर है. कारण, इस में शुद्ध, माइक्रोफ़ाइन्ड चन्दन जड़ी-बूटियां और अन्य विशिष्ट चीज़ें हैं.

अपने पर स्नेह बरसाइए. दूसरों को सबक सिखाइए.

गोकुल

सॅन्टाल व सैन्डलवुड पाउडर

टी. एस. आर. एण्ड कं., मद्रास
रामापुरम्, मद्रास 600 089.

ADWAVE/TSR/677R

एक बार दुहराया, फिर अपने आप ठठाकर हंस पड़े—'ओ, आप 'मैला आंचल' के फलानेजी हैं!'

'क्या बात, क्या बात!'

एक नया वकील—जो अपने को लेखक भी समझता है—इन मौकों का फायदा उठा रहा है. उसने सिर्फ तीन पेशी के दिन घूम-घूम कर देख लिया है—'अलबत्ता तस्वीर उतारी है, तस्वीर बनाने वाले ने.'

अब तक दूर बैठकर तमाशा देखने वालों ने देखा—'न अब 'कम्परमाइज' करवा देना चाहिए.'

लेकिन एक ही तारीख में चुटकी बजाकर निबटने वाले लेखकजी को जब सब कुछ सहकर एक महीना अटकना पड़ा है. मुद्दई गवाहों की जिरह वाली तारीख खत्म हो गयी. डिफेंस गवाही में, यानी मेरी ओर से श्री मातृका प्रसाद कोइराला आ रहे हैं. घटना के दिन पटने में लेखक से उनकी भेंट हुई. श्री मातृका बाबू उन दिनों पटने में बीमार थे—'कम्परमाइज' करने की आवश्यकता नहीं समझता. . . दो तारीख और. . . यानी 26-10-56 को फाइनल डेट है. . . . मैंने मुकदमा लड़ लेना ही अच्छा समझा है.

29-30 तक मैं प्रयाग की सेवा में पहुंच रहा हूं. कानून और कचहरी सो भी सब-डिवीजनल कोर्ट, बहुत अच्छी जगह है, तीन-चार कहानियां, अच्छी कहानियां मिल गयी हैं.

तारीख के दिन लगता है—किसी गोष्ठी में जा रहा हूं. गांव में बेकार पड़े रहने के बाद—जिस दिन अपने कस्बे में जाता हूं, अच्छा लगता है. 'बार लाइब्रेरी' में बैठकर दिलचस्प बातें सुनता रहता हूं. अच्छी चाय मिल जाती है हर आध घंटे पर. . . . अच्छी चाय की बात पर चावल की बात याद आयी. बाढ़ के कारण श्रीमान जिलाधीश ने चावलों का बाहर जाना रोक दिया है, अर्थात् दो मन चावल भी जिला से बाहर भेजने वाला जिला सप्लाई आफिसर की कचहरी में चार दिन अवश्य चक्कर लगावे, नहीं तो स्टेशन मास्टर बाबू बुक ही नहीं करेगा. फिर भी मैं चेष्टा में हूं. मुंह खोलकर किसी वाजिब आदमी से कह दूं तो वह 'परमिट-गिरमिट' ला देगा. वाजिब आदमी मिल जाये. श्री मालवीयजी वाले घर का क्या हुआ? यदि वे इस महीने भर का पैसा लेना चाहते हैं तो उन्हें दे दूंगा. मैं इस महीने की आखिरी तारीख तक आ ही रहा हूं.

मैं पूजा की छुट्टी के बाद यहां आता तो अच्छा होता, लेकिन सोचने-समझने में गलती हो गयी. इतने दिनों तक रुकना पड़ेगा, मैंने कल्पना भी नहीं की थी.

भाई जितेंद्रजी की याद सदा आती है. इस तरह फंसा हुआ हूं कि बेकार बैठा रहता हूं. एक पत्र भी नहीं लिख पाता हूं, फिर भी. भारती भाई जी आदि से भेंट हो तो मुकदमेबाज मित्र रेणु का सादर नमस्कार दे देंगे.

आप फिर से मेरा प्रणाम ग्रहण करें.

रेणु,
आपका

रेणु स्मृति : साक्षात्कार खंड

किसी भी लेखक से साक्षात्कार करना, उसकी कृतियों की समीक्षा करना अधिक मुश्किल काम नहीं है. लेकिन जिस लेखक ने अपने कृतित्व को जीवंत पात्रों के संदर्भ दिये हैं, उन्हें लेखकीय रूप दिया है, उन पात्रों को तलाश कर उनसे साक्षात्कार करना बहुत मुश्किल काम है, रेणु उन रचनाकारों में से थे, जो जीवित पात्रों को उनके 'स्व' की सही पहचान देते थे. इस खंड में प्रस्तुत हैं उनके ऐसे ही जीवित और जीवंत पात्रों के साक्षात्कार—

रेणु के पात्रों का यथार्थ

▣ अमरेंद्र मिश्र

रचनाकार 'सच' की अभिव्यक्ति के लिए परिवेश को देखता है. पात्रों से परिचित होता है और फिर रचना में सच की वकालत करता है. इसलिए पात्रों का यथार्थ और उस यथार्थ से रचनाकार का परिचय किसी भी उत्कृष्ट रचना की अपरिहार्य शर्त होनी ही चाहिए. इसी शर्त के संदर्भ में प्रस्तुत है रेणुजी के कथागत पात्रों का जीवंत संसार—

▣

रेणु-गांव (औराही-हिंगना) और दूर-दराज के गांवों में बसे इन पात्रों से साक्षात्कार के क्रम में मेरी पहली मुलाकात 'मैला आंचल' के 'बहरू चेथरू' से हुई. उपन्यास की शुरुआत इसी पात्र से होती है.... "गांव में यह खबर तुरंत बिजली की तरह फैल गयी—मलेटरी ने बहरू चेथरू को गिरफ्तार कर लिया है और लोबिन लाल के कुएं से बाल्टी खोलकर ले गये हैं...."

बहरू चेथरू उम्र 80 वर्ष. मेरे पास बैठा है.... रेणु के दरवाजे के नीचे की सीढ़ियों पर. बचपन में जब रेणु सिमरबनी स्कूल में पढ़ते थे. तो चेथरू उन्हें पहुंचा आया करता था. चेथरू हमेशा रेणुजी के साथ रहा.

बहरू चेथरू : लगता नहीं गांव में कोई आदमी बचा है!

आप आरंभ से ही रेणुजी के साथ रहे लेकिन आपने यह कब जाना कि रेणुजी 'मैला आंचल' में आपका उल्लेख कर चुके हैं?

रेणु जी ने कभी खुद नहीं बताया कि वे मेरा नाम उपन्यास में देने जा रहे हैं. बहुत दिनों तक मैं साथ रहा... बचपन में जब रेणु स्कूल में पढ़ते थे तो मैं स्कूल पहुंचा आया करता था. उसके बाद भी वे जब बाहर से गांव लौटते तो बातचीत होती रहती थी. 'मैला आंचल' प्रकाशित होने के बाद बच्चों ने बताया कि मेरा नाम छपा है.

आपने उपन्यास में अपना नाम देखा था?

नहीं, हम लिखे-पढ़े लोग नहीं हैं बाबू. अपने लड़के को कहा कि पढ़कर बता दे.

उसने पढ़कर बताया?

नहीं, बस इतना ही कहा कि आप निश्चित रहिये. आपका नाम उपन्यास में आ चुका है.

इमर्जेंसी के समय रेणुजी आपसे मिले?

उस बखत तो वे औराही में ही थे. बराबर सन् बयालीस की घटनाएं सुनाया करते थे. उन दिनों 'हरमेश' चिंतित रहा करते थे. जेल चले गये तो उनकी याद हमें आती रहती थी. लेकिन कर क्या सकते थे! सरकार का हुकुम था.

जब रेणुजी ने आपका नाम लिख दिया तो आप यह बताइये कि वे कैसे लेखक थे?

किताब लिखते थे. हम लोगों से घरेलू भाषा में बात करते थे. कभी अंगरेजी-फारसी में नहीं बतियाते थे. बड़े-बड़े लोग उनसे मिलने आते रहते थे. दरवाजा-हमेशा भरा रहता था. जब तक वे जिंदा रहे... लोग खूब आते रहे.

अब ?

अब कहां कोई आता है. जो आता है वह यही कहता है कि हम रेणु बाबू के विषय में लिखने आया है.

आपके साथ धान भी रोपते थे?

रोपनी के समय जब गांव में रहते थे तो एक बार अपना हाथ से धान रोपते थे... और तब हम लोग अपना काम शुरू करते थे. बरसात में खेत के बीच खड़ा होकर वे भीगते रहते थे और हरी-भरी फसल देखा करते थे.

रेणुजी के नहीं रहने पर आपको कैसा लगता है?

बहुत बुरा. दरवाजा उदास हो गया. लगता ही नहीं है कि अब गांव में कोई आदमी बचा है. भगवान की मर्जी... सेत्ता राम.

बहरू चेथरू की आंखों में आंसू उमड़ कर मानो आंखों में ही रहने की शपथ खा लेते हैं!

▣

रामलाल बाबू : फारबिसगंज के उत्तर में एक छोटा-सा कस्बा है—बथनाहा. वहां से थोड़ी दूर पर मड़हर गांव. रामलाल मंडल का गांव. रामलाल बाबू 'मैला आंचल' के जीवंत पात्र हैं वे.

'मैला आंचल' के दूसरे भाग की शुरुआत के बाद रामलाल बाबू का जिक्र आया है.... "बोलता है कि गांधीजी ने रामलाल बाबू को नोआखाली बुलाया है.... रामलाल बाबू जब गा-गाकर रमैन पढ़ने लगते हैं तो सुनने वालों की आंखों में वह खुद ही बोर ढरने लगता है."

रामलालजी को पता था कि रेणु इनका चरित्र अपने उपन्यास 'मैला आंचल' में प्रस्तुत करने जा रहे हैं. आपात काल के समय रामलालजी ने जेल में 'मैला आंचल' पढ़ा था और इन्हें प्रसन्नता हुई थी कि जैसा इनका यथार्थ संसार है वैसा ही वर्णन उपन्यास में भी हुआ है. उन्हें बेहद खुशी हुई.

रेणुजी ने अपने उपन्यास 'मैला आंचल' में आपके संबंध में जो कुछ लिखा क्या वह सच है?

जी हां, वह सच है.... आपका इशारा शायद इस बात की ओर है कि गांधीजी ने मुझे नोआखाली बुलाया था या नहीं? लेकिन वह हकीकत है. जेल में मैंने गांधीजी को रामायण सुनायी थी.

सुना है उन दिनों चुन्नी मंडल भी आपके साथ था जो अब जीवित नहीं है. क्या उसके विषय में आप कुछ बतायेंगे?

चुन्नी पागल था. जेल वार्ड में चुन्नी गांधी जी के चित्र से बात करता था... गांधी बाबा ! अंग्रेज राज कैसे जायेगा बाबा? हम हंसते थे. कोई अंग्रेज अफसर आता तो हम उसे सलामी ठोंकते थे किंतु चुन्नी नहीं. हम पर विशेष हिदायत थी.

रेणुजी के साथ आपका कैसा रिश्ता था? लेखक रेणु और आप या...

रेणु मसखरा था. अक्खड़ था. कवि और लेखक के विषय में तो उसकी बात ही मत पूछिये. लेकिन मुझसे वह जब मिला, लेखक की हैसियत से नहीं. मेरे प्रति बहुत सम्मान था उसके अंदर. जब भी वह शहर से औराही हिंगना आता, मेरा समाचार लेने मेरे पास आ जाता. कभी-कभी मुझसे मिलने यहां मेरे घर तक आ जाता और घंटों साथ रहता.

1972 के चुनाव के दौरान आपने रेणुजी के लिए क्या किया था?

मैंने अपनी ओर से भरपूर सहायता की थी. एक बार द्विजदेनी चौक पर जब वह बोल रहा था तो मुझे देखते ही उसने माइक मेरे हाथ में थमा दिया और मैंने अपना भाषण शुरू किया. रेणु वक्ता नहीं था, यही उसमें सबसे बड़ी कमी थी, लेकिन हमारा परिश्रम शायद खाली चला गया. चुनाव में रेणु हार गया.

हार के बाद आपने क्या सोचा?

साहित्यकार को एकाएक राजनीति में प्रवेश नहीं करना चाहिए. यह भी कि देश की राजनीति अच्छे लोगों को परख नहीं पाती.... कांग्रेसी को हारना चाहिए था.

आपको पता है कि आपातकाल के दिनों रेणु की गिरफ्तारी गलत ढंग से हुई और वे जेल भेज दिये गये. तब आपने क्या महसूसा?

सच पूछिये तो उसके जेल जाने के बाद मैंने भी प्रतिज्ञा की कि तत्कालीन शासन को समूल उखाड़ फेंकना है. मुझे प्रसन्नता हुई कि रेणु जेल चला गया. हमारे कितने साथी क्षमा मांगकर छूट गये लेकिन उसने ऐसा नहीं किया. रेणु के जेल जाने के बाद मैंने महसूस किया कि यह वक्त खोने का नहीं, बल्कि कुछ करने का है. और फिर मैंने छात्रों व युवकों को संगठित किया...

रामलालबाबू : मसखरे और अक्खड़ रेणु की याद:

जिन परिस्थितियों में रेणु की मौत हुई थी, उन्हें देखते हुए क्या ऐसा नहीं लगता कि वह सरकार की ही लापरवाही से हुई?

बिल्कुल. रेणु असामयिक चले गये. बेहद तकलीफ हुई. उनकी मौत की सूचना पाकर सरकार को जितना सोचना चाहिए, उसका रत्ती भर भी नहीं सोचा उसने. रेणु बहुत दिनों से तरह-तरह की बीमारियां झेल रहे थे और जयप्रकाश नारायण भी इस तथ्य को बखूबी जानते थे, किंतु...

आपके चरित्र का जो स्वरूप रेणु ने 'मैला आंचल' में प्रस्तुत किया है, उसे देखते आपको कैसा लगता है?

आप तो जानते ही हैं, गलत मूल्यों के स्थान पर सही सार्थक मूल्यों की पुनर्स्थापना यही मेरा संकल्प रहा है. इसलिए 'मेरा जीवन निजी न होकर सार्वजनिक है' और इसे रेणु ने अच्छी तरह प्रस्तुत किया है, जिससे मुझे प्रसन्नता होती है.

▣

जोगबनी चौक पर श्री फेंकन चौधरी से मेरी मुलाकात हुई तो रेणु का नाम सुनते ही वे उछल पड़े. रेणु का यह पात्र 'नेपाली क्रांति-कथा' में आया है.

'नेपाली क्रांति-कथा' में आपका चरित्र जिस रूप में उभर कर आया है, आप उससे संतुष्ट हैं?

हमने नहीं देखा कि कैसा लिखा है रेणु. किताब में तो नहीं देखा-पढ़ा अब तक लेकिन यथार्थ जीवन में जैसी सशक्त भूमिका मेरी रही है, उससे मैं निश्चय ही संतुष्ट हूं.

आपने क्यों नहीं देखा? मान लीजिए, यथार्थ में आप डाकू नहीं हैं लेकिन पुस्तक में कोई आपको डाकू बना दे तो?

रेणु पर विश्वास था. वह ऐसा नहीं कर सकता था. वह सच बोलता था. मेरी समझ में आज तक यह बात नहीं आयी

उसे गांव से पटना भेजा था. कहा था, रे, रेणु! गांव में रहोगे तो लोग क्या जान पायेंगे तुम्हें? शहर जाओ. वहां रहो. परिचय होगा लोगों से. लोग तुम्हें जानेंगे. फिर वह पटना चला गया और जब वापिस लौटा तो मुझे बताया कि गुरुजी आप बिलकुल सच कहते थे.

क्या रेणुजी ने आपसे इस बात का जिक्र किया कि वे आपका उल्लेख अमुक किताब में कर रहे हैं?

नहीं. ऐसा नहीं है. लेकिन वह मेरे साथ बहुत रहा. खास तौर से नेपाली क्रांति के समय और उसके पहले सन् बयालीस के आंदोलन के समय वह हमेशा साथ रहा.

सुना है, नेपाली क्रांति के समय रेणु ने कोई किताब लिखी थी?

हां, 'जयप्रकाश' शीर्षक से लिखा था लेकिन बाद में वह कहीं खो गयी.

लेखन के क्रम में क्या रेणु आपको शहर भी ले जाते थे?

नहीं. हमसे कभी भी कहानी-उपन्यास की बात नहीं करता था. लेकिन इतना कहता था कि गुरुजी, आपका जीवन बड़ा पवित्र है, परोपकारी है. मैं लेखक होने के नाते इतना करता रहूंगा कि आपको कभी मरने नहीं दूंगा. जब रेणु जेल गया तो मैं कई बार उससे मिलने जाता रहा.

अभी आप क्या कर रहे हैं?

अब क्या करूं. शुरू से ही कुछ-न-कुछ करता रहा हूं. अब तो शरीर भी बूढ़ा हो गया. शक्ति नहीं बची. छोटी-सी एक चाय की दुकान है... मोहल्ले के गरीब बच्चों को पढ़ाता भी हूं... हां, जब से रेणु मरा है, इच्छा होती है कि एक बार किताबों को देख जाऊं कि क्या लिखा है? □

फेंकन चौधरी : मुझे बहुत मानता था रेणु!

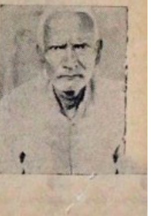

कुसुमलाल : चौथी कसम—अब मैं टप्पर गाड़ी नहीं चलाऊंगा!

कुसुमलाल उर्फ कुसुमा, उम्र 50 वर्ष. रेणु की चर्चा चलते ही कुसुमलाल रो पड़ता है, "जब से मालिक मर गये, गाड़ी पर टप्पर बांधना बंद कर दिया. अब कोई सिमराहा 'टीशन' बैलगाड़ी ले जाने के लिए कहता है तो इच्छा नहीं होती जाने की."

आप रेणुजी के लिए क्या-क्या करते थे?

मैं उनका चरवाहा था, बाद में हलवाहा भी रहा. रेनू बाबू पटना से गांव आते तो सिमराहा 'टीशन' पर हम बैलगाड़ी सव्हत पहुंच जाते और फिर रेनू बाबू गांव लौटते थे. मुझसे जितनी अधिक सेवाएं हो सकती थीं, वो सब करता था. जब रेनू बाबू थके-मांदे होते थे तो मैं शरीर-मालिश किया करता था.

गांव के अलावा और आप रेणुजी के साथ कहां-कहां रहे?

'फारबिसगंज द्विजदेनी कला-कुटीर' में जब वे वर्षों रहे थे, तो मैं उनके साथ था.

जब 'मैला आंचल' पर फिल्म की घोषणा हुई तो कैसा लगा?

फिल्म का नाम 'डागदर बाबू' हो गया. एक बार जब रेणु बाबू बीमार पड़े तो मैं डाक्टर की पुर्जी लेकर फारबिसगंज गया. पैसे राह में गिर गये. पता तब चला जब मैं दूकानदार से दवाइयां लेकर उसे पैसा देने लगा. फिर मैं दूसरे डाक्टर से मिला. बताया कि रेणु बाबू बीमार हैं. . . उन्होंने बड़ी सहायता की.

रेणजी की मौत के समय आप कहां थे?

गांव में था. जब मर गये तो मुझे पता चला. पटना से जयशंकर आये थे. उन्होंने ही मुझे और गांव-वालों को बताया कि रेणु बाबू अब मेरी टप्पर गाड़ी से कभी नहीं लौटेंगे. □

● आर. जेड./616-बीपालम कॉलोनी राजनगर, नयी दिल्ली-45

सै डो ज इं डि या

स्वनियंत्रित, दिन और तिथि, चाबी वाली जंट्स और लेडीज

घड़ियां

सभी प्रमुख घड़ी स्टोरों पर उपलब्ध

सेल्स आफिस : ११३९ चांदनी चौक, दिल्ली—११०००६

PRATAP/SW/97R

"**उ**स बार 'यूनिट' के 'प्रोडक्शन मैनेजर' ने मेरे ठहरने की व्यवस्था 'दि डायना गेस्ट हाउस' में की थी . . . नयी जगह के बारे में तरह-तरह के सवाल मुंह से अनायास निकलते गये और 'आफिस ब्याय' गर्दन हिला कर सभी सवालों के जवाब में 'हां जी-हां जी' कहता गया. बोला—साब! डायना गेस्ट हाउस में भी 'इंडस्ट्री' का लोग सब रहता है. एक गोआनीज लेडी का है . . ." (रेणु की 'लफड़ा' कहानी से).

दरअसल यह 'डायना गेस्ट हाउस' बंबई के उपनगर बांद्रा में घोड़बंदर रोड पर स्थित 'मरीना गेस्ट हाउस' है. इसकी मालकिन 'गोआनीज लेडी' नहीं, एक विधवा सिंधी महिला हैं. उनका असली नाम क्या है, यह तो शायद उन्हें भी याद नहीं होगा.

'लफड़ा' के सभी पात्र अब मरीना छोड़ चुके हैं, सिर्फ 'मैडम' हैं. सोचा, मैडम से ही मिल लिया जाये और एक दिन दोपहर मैं सोमेंद्र के साथ मरीना गेस्ट हाउस पहुंच गया.

अधेड़ उम्र की गोरी-चिट्टी महिला. छरहरा बदन, सरो कद, सफेद साड़ी-ब्लाउज, कानों में बड़े-बड़े झुमके, गले में लाकेट, मेकअप में दुरुस्त टिपीकल सिंधी चेहरा, चेहरे पर सौम्य मुस्कान. लगा ही नहीं कि यही वह मैडम हैं, जिनके बारे में लोग तरह-तरह की बातें करते हैं. और 'लफड़ा' में जो बात-बात पर गाली देती हैं, 'गेस्ट' के साथ 'अभी निकल जा हल्कट' तकिया कलाम के तौर पर इस्तेमाल करती हैं, लेकिन थोड़ी-सी बातचीत के बाद ही विश्वास करना पड़ा कि मैं 'सही मैडम' के पास आया हूं.

सोमेंद्र ने हंसते हुए बातचीत का सिलसिला जोड़ा, "मैडम, आपको याद है, यहां 6 नंबर में अरुण दा के साथ 'तीसरी कसम वाले' रेणु दा ठहरते थे . ."

"मुझे तो कुछ याद नहीं, यहां तो जो भी मुआ आता है 'दा' ही हो जाता—कोई अरुण दा, कोई मणि दा, कोई मृणाल दा, कोई राज दा, कोई रंजित दा . . . रेणु दा भी कोई आयेला होइगा . . . तुम बी त यहां सोमेन दा रहेला ऐ . . ." मैडम ने मुंह बनाकर जवाब दिया.

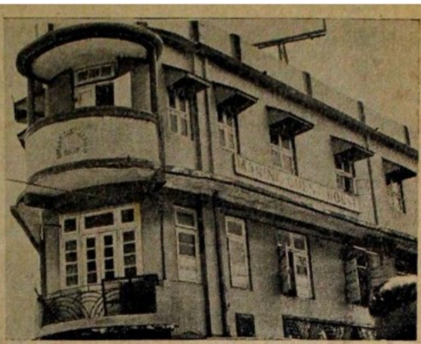

मैडम मरीना उर्फ़ मरीना गेस्ट हाउस उर्फ़ रेणु की लफड़ा कहानी

▣ अवधनारायण मुद्गल

"मैडम, अइसा कायेकू बोलता है . . . वो बोत बड़ा राइटर होता था . . . अब उनका डेथ होइगयेला है . . अब तुम ऐसा काइकू बोलता . . ." सोमेंद्र ने मैडम के लहजे में कहा.

"हाय, तो पैले क्यों नई बोला कि बेचारे का डेथ होइगयेला है . . .गॉड उस बेचारे की सोल का 'सांती' दे." मैडम ने अपने ढंग से श्रद्धांजलि दी . . . "लेकिन सोमेन, मला कुच्च बी याद नईऽच आता . . . ."

"अरे मैडम, याद नहीं, उस रात दो गेस्ट किसी छोकरी के पास से आया था और टैक्सी में उस छोकरी का मवाली आया था. तुमने गेस्ट को दो सौ रुपया दिया था और रेणु दा ने सारा लफड़ा निपटाया था . . ." सोमेंद्र ने याद दिलायी.

"हां याद आया . . . पैले क्यूं नहीं बोला कि तुम उस छोकरी माफिक बालों वाले दादा की बात बोलता है . . . वो बोत जेंटिलमैन दादा था. उसकी स्टोरी पै फिलम बना था . . ."

"हां मैडम, वही रेणुजी थे . . ." मैंने बातचीत का सूत्र अपने हाथ में संभाला, "उन्होंने आप पर और आपके गेस्ट हाउस पर एक बहुत अच्छी कहानी लिखी है. उन्हीं के बारे में मैं आपसे बातें करना चाहता हूं."

"बेटा, इतना दिन का बात अब मेरे कूं याद थोड़े ई होइगा . . . ये मुआ गेस्ट लोग बता सकता. मुला मेरे कू तो इत्तना ई पता होता कि वो बोत जेंटिलमैन राइटर था. फिर भ[illegible] तुम जो पूछेगा, हम बरोबर [illegible] वो हम कू बोला मैडम तुमरे

स्टोरी लिखेगा, तुमरे को उसका हीरोइन बनायेगा . . . मुआ लिखा बी और मेरे को बोला ई नई . . . "

"हां मैडम, उन्होंने 'स्टोरी' लिखी थी. आपके गेस्ट हाउस में जो लफड़े होते रहते हैं उनकी एक जीती-जागती तस्वीर खींची थी."

"बेटा, लफड़ा तो ये मुए गेस्ट करते हैं. अब तो सब सड़ेले मूं का झोपड़पट्टी का माफिक दो दमड़ी का आदमी आ गया है . . . पैसा बी नई देता, ऊपर से मांगता और है. पैले माफिक जेंटिलमैन गेस्ट अब आताईच नई. हम तुमको बताता है—नाइनटीन फिफ्टी में जे. ओमप्रकाश हमरा गेस्ट था. उसने 'फरमाइश' फिलम यहीं बनाया था. 1954 से 1957 तक राजेंद्रकुमार यहां रहा, वो आज बी हमारा इज्जत करता है. अर्जुनदेव रश्क, मोहन राकेश, लेख टंडन, राजमार्गोश, मृणाल सेन, अरुण कौल, मनी कौल, दिनेश ठाकुर, रोचक पंडित, सुदर्शन नाग, सत्तेन सरद (सत्येंद्र शरत), अली अकबर खान (प्रख्यात सरोद वादक), के. के. महाजन (कैमरा मैन) सभी यहां रहा. हमारा इज्जत किया और तरक्की किया. लेकिन आज का गेस्ट कुछ बी इज्जत नई करता. हम बोलता—गंदा बाजारू छोकरी लोग के पास मत जा, लेकिन ये नई मानता. हम समझाता—सड़ेला बीमारी ले के मां-बाप को क्या मुं दिखायेगा! लेकिन ये समझताईच नाय. अब तुमीच बोलो बेटा, हम इनके भले को बोलता या बुरे को? हम इनको गाली देता, डांटता. परदेश में हम इनका मां है, मदरली ट्रीट करता है. भला मां का गाली कबी किसी को लगा क्या? कब्बी नई लगा. लेकिन ये कुछ नहीं जानता-समझता. उल्टा मेरे को ई बदनाम करता. ये फिलम इंडस्ट्री का गेस्ट लोग पूरा भुक्कड़-खट्टल पार्टी है . . . हम इनको बच्चा माफिक प्यार करता है . . ." मैडम का गला भर आया था और पलकों के किनारे गीले हो गये थे. शायद ऐसा एक सांस में सारा गुबार उंडेलने के कारण हुआ था.

मुझे लग रहा था कि हमारी बातचीत अधिक फलवती नहीं होगी. स्पष्ट था कि मैडम को अपने गेस्ट हाउस के अलावा और कुछ भी याद नहीं. वे रेणु जी के बारे में उतना भी नहीं जानतीं जितना रेणु जी उनके बारे में जानते थे या रेणुजी के पाठक 'लफड़ा' कहानी की 'मैडम' के बारे में जानते हैं. मैंने सोमेंद्र को इशारा किया और फिर मिलने की औपचारिकता ज़ाहिर करके चले आये. □

मरीना गेस्ट हाउस का कमरा नं. 6, जहां रेणु रहा करते थे.

"वो (रेणु) हमकू बोला—तुमरे पर स्टोरी लिखेगा, तुमरे कू उसका हीरोइन बनायेगा!" मैडम से बातचीत करते हुए मुद्गल.

'अगिनखोर' के कथा-सूत्र

'लफड़ा' के अतिरिक्त मुझे 'अगिनखोर' के कथा-सूत्रों की भी तलाश थी और इस तलाश में मददगार हो सकते थे भाई जुगनू शारदेय. शारदेय रेणुजी के काफी नजदीक रहे हैं और उनके युवा मित्रों में से हैं. मुझे पता चला था कि 'अगिनखोर' के 'सूतपुत्र' में किसी हद तक शारदेय का भी हाथ है. शारदेय का आसानी से मिल जाना अपने आप में किसी चमत्कार से कम नहीं. और वह चमत्कार मेरे साथ घट गया. शारदेय अचानक माधुरी के आफिस में मिल गये.

यही नहीं दूसरे दिन सुबह बांद्रा स्थित मेरे फ्लैट पर आने का वायदा भी कर गये—कर ही नहीं गये, उसे निबाह भी गये

हां तो दूसरे दिन सुबह मैं और शारदेय आमने-सामने थे. बातचीत बड़े ही अनौपचारिक ढंग से शुरू हुई. मैंने पूछा, "यार शारदेय, रेणुजी की 'अगिनखोर' का सूतपुत्र कौन है?"

शारदेय—मैं. लेकिन सही बात यह है कि मैं अकेला ही नहीं हूं. रेणुजी ने मेरा और पटना के युवा कवि आलोक धर्मा का कूट-पीस कर मिक्चर बनाया है.

मु.—मिक्शचर किस तरह बनाया है और तुम उसे अलग कैसे करते हो?

शा.—ज़ाहिर है कि अपने बारे में तो मैं जानता ही हूं. आलोक धर्मा मेरे मित्र हैं. उनके बारे में भी मैं जानता हूं और हम दोनों रेणुजी के काफी नजदीक रहे हैं. हमारी बेझिझक बहसें हुई हैं. जो चीज़ें हमें रेणुजी की पसंद नहीं आयीं उन्हें हमने खुलकर कंडेम किया है. 'अगिनखोर में रेणुजी ने जो कुछ लिखा है, वह पूरी तरह हमारी बहसों पर आधारित है.

मु.—इसका मतलब यह हुआ कि रेणुजी ने तुम्हारी बहसों में अपना नज़रिया मिला कर एक रपट भर लिख दी है . . . इस तरह वह कहानी नहीं मानी जा सकती!

शा.—नहीं, नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है कि मैं उसके कहानी होने को ही कंडेम कर रहा हूं. वह कहानी तो है ही और एक अच्छी कहानी है. दरअसल, रेणुजी हम दोनों या हमारी जैसी रिबेल पीढ़ी के एटीच्यूट को वास्तविक ढंग से लिखते थे. शब्द पात्रों के होते थे और फैलाव तथा बुनावट रेणुजी की होती थी. वे पात्रों के भीतर को पहचानने की कोशिश करते थे. उनकी ऑब्जर्वेशन पावर और मैमोरी बहुत शार्प थी. वे लोगों के व्यवहार को देखते रहते थे और फिर अपने सोचे हुए पात्रों को उस तरह से ढाल लेते थे.

मु.—जब वे ढलाई का काम अपने तरीके से करते थे, तो मूर्ति भी वही बनती होगी जो वह चाहते होंगे. इस तरह असली पात्र कहीं-न-कहीं तो डिसशेप होते ही होंगे! फिर तुम या कोई भी पात्र अपने आपको पहचानता कैसे है कि इतना मैं हूं और इतना दूसरा है?

शा.—इस पहचान में तो कुछ शब्द और घटनाएं ही मदद करती हैं.

मु.—वे शब्द और घटनाएं कौन-सी हैं जिनके सहारे तुमने स्वयं को और आलोक धर्मा को पहचाना?

शा.—उन दिनों मैं 'आइक-स्ला' और 'चिरकट' शब्द अक्सर इस्तेमाल करता था. रेणुजी ने भी 'आइक-स्ला' शब्द पात्र के मुंह से बार-बार कहलवाया है. इसी तरह तस्वीरों की आलोचना वाला हिस्सा भी मेरा ही है. रेणुजी के कमरे में फिल्म स्टारों और राजनेताओं की तस्वीरें टंगी थीं. खासतौर पर नेहरूजी और विधानचंद्र राय की बड़ी-बड़ी तस्वीरें उन्होंने टांग रखी थीं. वे नेहरूजी की बहुत तीखी आलोचना किया करते थे. मैं हमेशा उनसे उन तस्वीरों को हटा देने की बात किया करता था. एक दिन मैं गुस्से में आकर नेहरूजी की तस्वीर उतारने लगा तो झपट कर उन्होंने मुझे पकड़ लिया और बोले—'इस आदमी की तस्वीर मत उतारो. यह तस्वीर मुझे बार बार गुस्सा दिलाकर युवा शक्ति से जोड़े रखती है. इस आदमी ने देश को बदलने के वायदे किये थे लेकिन कुछ भी नहीं किया. इसलिए जब भी मैं इसे देखता हूं मेरा गुस्सा ताजा हो उठता है. यह सिर्फ क्रोध को बनाये रखने के लिए है.' आपको पता ही होगा कि इन तस्वीरों का प्रसंग उस कहानी में है.

मु.—होने के लिए तो आभारानी राय के कारण रेणुजी को पिता मानने के प्रसंग भी हैं. और तुम्हारे अनुसार तुम्हारे ही चरित्र 'सूतपुत्र' ने वह ड्रामा किया है, उसके बारे में क्या ख्याल है?

(शारदेय कुछ देर गंभीर रहे और फिर जोर से हंस पड़े)

शा.—मुद्गल भाई, वह ड्रामा भर नहीं था. उसके पीछे भी आंशिक सच्चाई थी. दरअसल वह पात्र कहानी में गॉड फादर की तलाश करता है और मैं हमेशा एक बड़े भाई की तलाश करता रहा हूं.

मु.—इस कहानी में 'सूतपुत्र' या तुम्हारी जो करेक्टर स्टडी दी गयी है, वह कोई बहुत अच्छी इमेज तो नहीं बनाती. क्या तुम्हें इसमें अपना और अपनी पूरी पीढ़ी का अपमान नहीं लगा?

शा.—हां मुझे बुरा लगा था और इसके लिए मैंने उनसे काफी झगड़ा किया था. उनसे साफ-साफ कहा था कि आपने युवा पीढ़ी पर कातिलाना हमला किया है. उनका कहना था कि आज की युवा पीढ़ी का यह एंग्री यंग मैन वाला मुखौटा सिर्फ मान्यता पाने के लिए है. मान्यता पाने के लिए ही वह चिल्लाती है, चीखती है और अलग से ही पहचानने के लिए अजीब-अजीब हरकतें करती है . . . गालियां देती है और अगर इस पर भी उसे मान्यता नहीं मिलती तो बौखला उठती है

मु.—क्या तुम उनकी इस बात से सहमत हो?

शा.—पहले तो सहमत नहीं था. मुझे खुद उनकी बातें ही युवा पीढ़ी से मान्यता पाने की कोशिश लगती थीं. मेरे अनुसार युवा पीढ़ी ही अपने वक्त की सही पहचान होती है, इसलिए हर समझदार लेखक युवा पीढ़ी से जुड़ कर अपने वक्त की सही पहचान से जुड़े रहने का एहसास बनाये रखना चाहता है लेकिन स्थितियों ने मुझे समझा दिया है कि रेणुजी भी अपनी जगह ग़लत नहीं थे.

रेणु : एक अंतर्विरोधी रचनात्मक व्यक्तित्व

▣ विजय मोहन सिंह

रेणु को हिंदी कथा-साहित्य की परंपरा में रखकर समझना थोड़ा मुश्किल काम है. वे हिंदी में कथा-साहित्य के प्रायः सभी रूढ़ तथा रूक्ष रूपों को ढहाते हुए प्रवेश करते हैं और इस तरह वे हिंदी गद्य (खड़ी बोली के रूप में बदनाम!) को संगीत की सरहदों तक पहुंचा देते हैं, ऐसा वे अपने शब्द संकेतों या प्रायः अधूरे वाक्यों के द्वारा ही नहीं करते, बल्कि उनसे रंगों, ध्वनियों तथा दृश्यों का ऐसा 'संभार' तैयार करते हैं, जिसे हम केवल पढ़ते नहीं, एक साथ-देखते, सुनते, छूते और निरंतर अनुभव करते हैं.

यह बात तब और महत्वपूर्ण हो जाती है, जब हम यह मालूम करते हैं कि उन्होंने हिंदी उपन्यास की लगभग असंभव स्थिति में लिखना शुरू किया था. पांचवें दशक के शुरू के दिन हिंदी उपन्यास के लिए बहुत सुखद नहीं थे—उसी ज़माने के आस-पास 'गत्यवरोध' शब्द काफी ज़ोर पकड़ने लगा था.

केवल भाषा की बात नहीं, आज़ादी के बाद देश में—मुख्य रूप से गांवों में जो कुछ घटित हो रहा था, हिंदी लेखन प्रायः उसकी जानकारी तथा अभिव्यक्ति से शून्य था. भाषा के क्षेत्र में तो 'शेखर' और 'नदी के द्वीप' ही 'मील के पत्थर'

बने हुए थे. ऐसे में 'मैला आंचल' का प्रकाशन एक छोटे-मोटे चमत्कार से कम नहीं था. हालांकि लोगों का ध्यान 'मैला आंचल' की ओर अपेक्षाकृत देर से गया—यह देरी और भी बढ़ गयी होती अगर उस समय के यशस्वी समीक्षक स्वर्गीय नलिनविलोचन शर्मा ने 'मैला आंचल' की महत्ता पर एक छोटी-सी टिप्पणी नहीं लिखी होती. इस देरी का एक कारण और भी था : रेणु, हिंदी लेखन में तब प्रायः एक 'इंट्रीयूडर' की तरह ही आये थे, यानी उस वक्त हिंदी में महारथी लेखकों की जो जमात सपरिश्रम रचनारत थी, उससे वे बाहर के थे, प्रायः अनाम!

स्वयं 'मैला आंचल' का पहला संस्करण पटना के एक अज्ञात-से प्रकाशक ने बेहद रद्दी कागज़ पर छापा था. किंतु 'मैला आंचल' में कथा-गद्य का जो सघन स्थान देखने को मिला, वह अभूतपूर्व था. उसने 'गत्यवरोध' आदि फतवों को छिन्न-भिन्न कर दिया. लेकिन जैसा मैंने पहले भी कहा, 'मैला आंचल' की सफलता केवल उसके संगीत के सरहदों को छूने वाले गद्य में नहीं थी, वह तत्कालीन यथार्थ तथा वास्तविकता की एक बहुत बड़ी 'परती' को तोड़कर पैदा हुआ उपन्यास था.

क्रमश : 'मैला आंचल' ही नहीं रेणु का (और बाद के दर्जनों अन्य लेखकों का भी) समस्त कथा-साहित्य ही 'आंचलिकता' का पर्याय बन गया—शायद वह भी 'मैला आंचल' की छोटी-सी भूमिका में रेणु के एक निरीह से शब्द प्रयोग के कारण! किंतु नारे तथा आंदोलन की हद तक प्रचलित हो जाने वाले इस शब्द ने रेणु के कथा-साहित्य को समझने-समझाने में—मेरे ख्याल से थोड़ी बाधा ही पैदा की. स्वयं रेणु को इस शब्द की इस तरह की अनुगूंजों और परिणतियों के बारे में पता नहीं था, न ही वे इसे इस रूप में स्वीकार करने को तैयार थे.

मुझे स्मरण है, संभवतः 1956 में जब 'परती परिकथा' बनारस में छप रही थी और उसी सिलसिले में रेणु वहां थे, मैंने अपने कुछ मित्रों के साथ बनारस विश्वविद्यालय के बिड़ला हॉस्टल में उनके सम्मान में एक गोष्ठी आयोजित की थी, जिसके अध्यक्ष नामवर सिंह थे और डॉ. शिवप्रसाद सिंह भी उसमें उपस्थित थे. अंत में अपने वक्तव्य में रेणुजी ने इस शब्द के प्रचार से बहुत शरमाते हुए कहा था कि उन्हें कतई यह गुमान नहीं था कि 'आंचलिकता' शब्द के नाम से साहित्य में कोई नया खाता या खाना खुल जायेगा!

यहां प्रसंगवश यह कहना अनुचित नहीं होगा कि उस वक्त हमें पहली बार यह लगा — और फिर बराबर लगता रहा कि रेणु अपने तथा अपने लेखन के बारे में कोई भी बयान देने में बेहद कठिनाई तथा परेशानी (अपने अनेक समकालीनों के सर्वथा विपरीत) अनुभव करते थे. जे.पी., लोहिया तथा कोईराला के साथ उनकी सक्रिय राजनीतिक हरकतों से हम परिचित थे. अतः अपने बारे में कुछ भी बोलने की उनकी इस परेशानी, शर्म और दुविधा ने हमें कम हैरान नहीं किया था.

यह रहस्योद्घाटन बहुत बाद में हो सका कि आमतौर पर अनौपचारिक मुलाकातों में रेणु बेशुमार चुटकलों, लतीफों तथा दिलचस्प संस्मरणों से भरे हुए ऐसे आदमी थे, जिनसे मिलना हमेशा एक पुरलुत्फ यादगार बन जाती थी. हां, उन्हें खुलने और खोलने में थोड़ी देर ज़रूर लगती थी. सामान्य अर्थ में वे ज़्यादा सामाजिक या व्यावहारिक आदमी नहीं थे. अक्सर वे अंतर्मुखी लगते थे. एक सौंदर्यवादी रुझान भी उनके रहन-सहन और पहरावे में था. खुली तथा एक जनवादी किस्म की राजनीतिक सक्रियता के बावजूद उनमें कोई अंतर्विरोध ज़रूर था. शायद इसी अंतर्विरोध में उनकी गहरी रचनात्मकता का राज़ भी छिपा था. उनका किसी राजनीतिक हलचल में सहसा कूद पड़ना, एक वैचारिक निर्णय से अधिक भावनात्मक था. कुछ वैसा

जैसे बॉयरन का ग्रीक युद्ध में प्राण दे देना. एक ओर उन्हें उम्दा शराब, लज़ीज़ खाना तथा थोड़े अभिजात लोगों की संगत प्रिय थी (पटना का बांकीपुर क्लब, पैलेस होटल) तो दूसरी ओर निहायत फक्कड़, लावारिस तथा 'क्रूड' किस्म के लोगों के बीच कच्ची-पक्की खाते तथा खतरनाक, मुश्किलों तथा दुखों से भरी 'जानलेवा' ज़िंदगी जीते!

रेणु उस अर्थ में आधुनिक नहीं हैं जिस अर्थ में उनके कई समकालीन या परवर्ती लेखक आधुनिक होने का दावा करते हैं. खास तौर पर उनकी 'स्त्रियां' कतई आधुनिक नहीं हैं बल्कि उनमें बंगाली उपन्यासों (शरत-रवींद्र) की नायिकाओं के गुण ज़्यादा मिलते हैं. हिंदी कविता में यदि समानांतर ढूंढ़ें तो जैसे शमशेर बहुत रूढ़ अर्थ में आधुनिक नहीं हैं—बहुत कुछ प्रतीकवादी तथा 'सुरियलिस्टिक' प्रभाव उनके यहां है. पर जैसे हम शमशेर को छायावादी नहीं कह सकते, वैसे ही रेणु को भी. एक तरह का सेंटीमेंटल आवेश उनके यहां है—यही उन्हें सक्रिय राजनीति के आवेश में भी ले गया—किसी सुनिश्चित विचारधारा का प्रभाव नहीं. साहित्य में अपनी ज़िंदगी नाकाफ़ी लगते ही वे सहसा एक 'निर्णय' के द्वारा सक्रिय राजनीति में छलांग लगा देते हैं. आपात्काल के दिनों में जब हिंदी के अधिकांश आधुनिक तथा 'क्रांतिकारी' लेखक मौन या मत परिवर्तन के शिकार हो गये थे—रेणु ने लेखन से भी कई कदम आगे जाकर एक 'निर्णय' लिया था. यही निर्णय प्रकारांतर से उनकी 'मृत्यु' बना, किंतु यही निर्णय उन्हें लेखक और व्यक्ति दोनों स्तरों पर एक ज़्यादा बड़ा जीवन भी दे गया. जिन लोगों को 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' के बाद 'जुलूस' या 'दीर्घतपा' में रेणु के लेखन का विकास नहीं दिखायी देता—उन्हें पता चलना चाहिये कि रेणु ने इन सबसे आगे जाकर 'फाइनल' संघर्ष में हिस्सा लिया था. वह 'संघर्ष' जिसके बाद आदमी के पास अपनी सार्थकता प्रमाणित करने को कुछ भी नहीं बचता. इसीलिए 'आधुनिकता' जैसे शास्त्रीय कटघरे रेणु के संदर्भ में निरर्थक लगने लगते हैं. □

'तीसरी कसम' की शूटिंग के दौरान फुर्सत के क्षण

कहानी महुआ घटवारिन की

▣ फणीश्वरनाथ रेणु

'तीसरी कसम' की शूटिंग के दिनों शैलेंद्रजी मुझसे 'महुआ घटवारिन' की 'ऑरिजिनल गीत-कथा' सुनना चाहते थे ताकि उसके आधार पर गीत लिख सकें. एक दिन हम 'पवई-लेक' के किनारे एक पेड़ के नीचे जाकर बैठे. 'महुआ-घटवारिन' का गीत मुझे पूरा याद नहीं था. इसलिए मैंने एक छोटी-सी भूमिका के साथ 'सावन-भादों' का गीत अपनी भोंड़ी और मोटी आवाज़ में, भरे गले से सुना दिया. गीत शुरू होते ही शैलेंद्र की बड़ी-बड़ी आंखें छलछला आयीं और गीत समाप्त होते-होते फूट-फूट कर रोने लगे. गीत गाते समय ही मेरे मन के बांध में दरारें पड़ चुकी थीं. शैलेंद्र के आंसुओं ने उसे एकदम तोड़ दिया. हम दोनों गले लगकर रोने लगे. ननुआं (शैलेंद्र का ड्राइवर) टिफिन कैरियर में घर से हमारा दोपहर का भोजन लेकर लौट चुका था. हम दोनों को इस अवस्था में देखकर वह चुपचाप एक पेड़ के पास ठिठक कर बहुत देर तक खड़ा रहा. . . इस घटना के कई दिन बाद, शैलेंद्र के 'रिमझिम' में पहुंचा. वे तपाक से बोले, "चलिए, उस कमरे में चलें. आपको एक चीज़ सुनाऊं."

हम उनके शीत-ताप-नियंत्रित कमरे में गये. उन्होंने मशीन पर 'टेप' लगाया. बोले, "आज ही 'टेक' हुआ है." मैंने पूछा, "तीसरी कसम?" बोले, "नहीं भाई, 'तीसरी कसम' का टेक होता तो आपको नहीं ले जाता?. . . यह 'बंदिनी' का है. . . पहले सुनिये तो. . . . !"

रेकार्ड शुरू हुआ—'अब के बरस भेज भैया को बाबुल सावन में लीजो बुलाय रे. . .अमवा तले फिर से झूले पड़ेंगे. . .कसके रे जियरा, छलके नयनवां . . .बैरन जवानी ने छीने खिलौने . . . बाबुलजी मैं तेरे नाज़ों की पाली. . . बीते रे जुग कोई चिठ्यो ना पाती, ना कोई नैहर से आये रे-ए-ए! .'

कमरे में 'पवई-लेक' के किनारे वाले दृश्य से भी मर्मांतक दृश्य उपस्थित हो गया. हम दोनों हिचकियां ले-लेकर रो रहे थे—आंसू से तर-ब-तर. . . शैली (तब बांटू यानी हेमंत!)ने किसी काम से अथवा गीत सुनने के लिए कमरे का दरवाज़ा खोला और हमारी अवस्था देखकर कमरे से चुपचाप बाहर च[illegible] गया. . . (ऋणजल धनज[illegible]

रेणु : बीमारी से मृत्यु तक की मार्मिक कहानी!

अभी भी हमारे यहां स्थिति यह नहीं है कि साहित्यकार को ऐसी चिकित्सा-सुविधाएं मिलें जो सामाजिक जीवन में उसके कष्ट को राहत दे सकें. रेणुजी के देहावसान के बाद उनके बहुत नजदीकी श्री जयशंकरजी का यह कथ्य इसी दर्द को व्याख्यायित करता है.

रेणु के परिचितों में उनके सबसे अधिक निकट रहने वाले और साहित्यिक रिश्ते में उनके भतीजे जयशंकरजी की इस पंक्ति पर मैं चौंक गया. लेकिन वे तटस्थ थे और खुद को दो वर्ष पीछे धकेल कर रेणु की बीमारी से मौत तक की कारुणिक पृष्ठभूमि पर कह रहे थे. वे यह मान लेने को कतई तैयार नहीं थे कि उनकी मृत्यु सामयिक और स्वाभाविक रूप से हुई थी. वे बार-बार इस बात पर जोर दे रहे थे कि बीमार रेणु का इलाज ग़लत-चिकित्सकों की लापरवाही के दौरान हुआ था.

रेणु की जगह अगर कोई राजनेता होता तो उसकी मृत्यु पर 'जांच कमीशन' अवश्य बैठा दिया गया होता. लेकिन इस देश में साहित्यकार की मृत्यु का हश्र ऐसा ही होता है. अब तो रेणु एक 'इतिहास-पुरुष' बनकर रह गये हैं और इतिहास गूंगा होता है न?" जयशंकर बता रहे थे.

उन्हें दो प्रकार की बीमारियां थीं—'माइग्रेन' और 'पेप्टिक अलसर एसीडिटी.' आज से करीब दस वर्ष पूर्व वे एक बार गांव में बीमार पड़े थे और इसकी खबर पाते ही लतिकाजी उन्हें अपने साथ पटना ले गयी थीं.

इमर्जेंसी के दिनों में जब वे कुछ दिनों के लिए मातृका बाबू (भूतपूर्व प्रधानमंत्री, नेपाल) के यहां ठहरे थे, तो वहां भी इसी बीमारी ने परेशान करना शुरू किया था. एक रोज जब मैं उनका हाल-चाल लेने पहुंचा तो देखा—वे फर्श पर उकड़ूं बने और एक हाथ से अपना पेट दाबे छटपटा रहे थे... फिर शीघ्र ही 'प्रोवेंथिन' और 'कोका-कोला' लाने को कहा. 'प्रोवेंथिन' और 'म्युकेनजेल' लेने के बाद ऐसा लगा कि दर्द घट गया है. वे थोड़ा आराम महसूस करने लगे थे.

नेपाल से गांव लौटने के बाद फिर से [illegible] उखड़ गया. उन्होंने मेरे पास खत भेजा था—'विराट नगर वाला दर्द फिर से उभर गया है. इस बार तो और भी गंभीर हालत में हूं.'

उनसे मिला तो दृढ़ निश्चय होकर कहने लगे, "इस बार दिल्ली जाकर डॉ. आत्मप्रकाश से पेट फड़वा लूंगा!"

▣

16 नवंबर '76 की सुबह वे मेरे घर रिक्शा से आये थे. उनका चिरपरिचित और खूबसूरत-सा वह चेहरा मुझे किसी अपरिचय के सैलाब में डूबता-सा लगा. उनका गोरा चेहरा बिल्कुल स्याह पड़ गया था. आंखें धंसी हुई. . .सहसा वे पहचान में नहीं आ रहे थे.

मेरे घर के पास सटा डॉ. महानंद झा का हस्पताल है, जहां उनकी चिकित्सा की अच्छी व्यवस्था थी. आज से दस वर्ष पूर्व डॉ. झा ने ही उनकी सारी चिकित्सा की थी. इस बार भी चिकित्सा उन्हीं के द्वारा हुई और रेणु चाचा स्वस्थ-प्रसन्न हो गये. फिर तो कुछ दिनों तक हमारी बातचीत का लंबा,अंतहीन सिलसिला चलता रहा. . .लेकिन नियति को कुछ और ही मंजूर था. मौत, जैसे साये की तरह उनका पीछा कर रही थी.

30 नवंबर '76 की रात ग्यारह बज रहे थे. अचानक वे उठ गये. शौचालय की ओर मुड़े और वहीं से आवाज दी, "जय, मुझे पकड़ो! जल्द डॉक्टर को बुलाओ, मेरा पेट फटा जा रहा है. . . !"

"परफुरेशन हो गया है!" डॉक्टर ने कहा था. मुझे डॉक्टर की आवाज किसी गहरे कुएं में डूबती-सी लगी थी. पल-प्रतिपल उनकी हालत बिगड़ती ही जा रही थी. फिर डॉक्टर की सलाह पर रातों-रात 'सलाइन' चढ़ाते हुए उन्हें हम पटना लाये. दिन के बारह बजे हमारी कार अगम कुआं पहुंची. मैंने कहा, "अब हम पटना पहुंच गये. आप बताइये कहां जाना है?" रेणु चाचा कार की पिछली सीट पर लेटे पड़े थे..., "पहले फ्लैट तक चलो, लतिकाजी को साथ ले लेना है."

कार उनके निवास, 2/30 राजेंद्र नगर पहुंची. पता किया तो मालूम हुआ लतिकाजी नहीं हैं. वह स्कूल गयी हैं. मुझे स्कूल का पता मालूम न था. रेणु चाचा कार की सीट पर लेटे-लेटे ही दायें-बायें कहते हुए हमें रास्ता बताते रहे. फिर उन्हीं के निर्देश पर हमारी गाड़ी 'राममोहन सेमिनरी स्कूल' के गेट पर रुक गयी. मैं बेतहाशा भाग रहा था. लतिकाजी मिलीं तो एक ही सांस में मैं सब कुछ कह गया. वे अपनी साड़ी का पल्लू सम्हालती, तेजी से स्कूल की सीढ़ियां उतरती गेट तक आ गयी थीं. रेणुजी की हालत देखते ही उन्हें गुस्सा हो आया और स्नेह-मिश्रित क्रोध में वे बंगला में पुकारने लगीं, "जब कभी तुम गांव जाते हो, ऐसे ही बीमार होकर लौटते हो!"

▣

दिन के दो बज रहे थे. रेणु उसी तरह लेटे थे. चुप-खामोश. मैं लतिकाजी की तरफ देखता हूं, जो बार-बार अपनी कलाई घड़ी देख रही हैं. कार रुकती है—राजेंद्र सर्जिकल इमर्जेंसी वार्ड के सामने. मैं पीछे पलटकर पूछता हूं, "किस डॉक्टर को सूचित करूं?" काफी देर सोचने के बाद वे जवाब देते हैं, "डॉ. आर.बी.पी. को." लेकिन उनकी स्थिति देखते हुए डॉ. आर. बी.पी.को खोजना मेरे लिए संभव नहीं था. तभी मेरी नजर कुछ हाउस-सर्जन के बीच घिरे डॉ. यू. एन. शाही पर टिक जाती है. मैं झटके से कहता हूं, "मेरे सामने डॉ. शाही हैं. यदि आप कहें तो. . . .

कुछ देर चुप रहने के बाद वे कहते हैं, "चलो ठीक है!" मानो, हारकर ऐसा कहा हो.

मैं फणीश्वरनाथ रेणु हूं!

लतिकाजी स्ट्रेचर के लिए दौड़ पड़ती हैं. उन्हें हम स्ट्रेचर पर लिटा देते हैं. शाही जी आते हैं. एक उड़ती निगाह से रेणु को देख लेते हैं, मानो कोई विशेष बात नहीं है, अगर कुछ है, तो बस यही कि एक और मरीज़ वार्ड में भरती के लिए आ गया है. रेणु के मन में कुछ कचकचा कर रह जाता है. लेखक रेणु मन-ही-मन अनुमान लगाते हैं, 'शायद डॉ. शाही ने उन्हें अब तक नहीं पढ़ा है.' डॉ. शाही की, उनके प्रति किसी विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया का न होना रेणु के मन में शायद कोई अज्ञात भय पैदा कर जाता है कि शाही लापरवाह दिख रहे हैं. तभी वे चिल्लाकर कह उठते हैं, "मैं फणीश्वरनाथ रेणु हूं. पहचाना या नहीं?"

फिर हम एक्स-रे रूम की ओर चल पड़ते हैं जहां मरीज़ों की लंबी कतार है. एक्स-रे रूम में बैठे उस अपरिचित व्यक्ति से मैंने प्रार्थना के स्वर में कहा कि रेणुजी की स्थिति अच्छी नहीं हैं. आप कृपया शीघ्र एक्स-रे ले लें. लेकिन मेरी बात उसकी बीड़ी के उजले धुएं में कहीं खो गयी और वह बीड़ी फूंकता रहा.

विलंब से ही सही, एक्स-रे हो गया. स्ट्रेचर पर लेकर लौटते वक्त एक कर्मचारी की हथेली मेरी आंखों के आगे पसर गयी. मेरे दोनों हाथ स्ट्रेचर से लगे थे जिन्हें अपनी जेब तक पहुंचा पाना मुश्किल था. वह कर्मचारी खाली हाथ वापस चला गया कुछ बुदबुदाता हुआ.

▣

उस शाम रेणुजी खुद को हल्का महसूस कर रहे थे. मुझे गांव लौट जाने को कहा, "गांव-घर के लोग चिंतित होंगे. अब घबराने की कोई बात नहीं है. . . बेणु-मां को कहना चिंतित न हो. शीघ्र ही गांव लौट जाऊंगा."

अस्पताल से मुक्ति मिल गयी. वे अपने निवास स्थान, राजेंद्र नगर वाले फ्लैट में आ गये थे. स्वस्थ होने के बाद अनेकानेक साहित्यिक कार्यक्रमों में भाग लिया. मैं गांव लौट आया था. मेरे बाद वेणु भी लौट आया. उसने बताया था कि ऑपरेशन की तिथि निश्चित होते ही वे खबर करेंगे.

रेणु सीरियस : सेंड वेणु

पटना से डॉ. रामवचन राय का टेलीग्राम फारबिसगंज जगदीश मिल में मिला—'रेणु सीरियस, सेंड वेणु!' घर में कोहराम मच गया. आखिर यह क्या हो गया? उन्होंने तो कहा था कि ऑपरेशन के पूर्व सूचित करेंगे लेकिन अचानक. . .!

मैं पटना चला गया. लतिकाजी से मिला तो पता चला कि जिस रोज वे ऑपरेशन के लिए तैयार होकर अस्पताल गये थे, काफी प्रसन्न थे. जमकर बातचीत की थी. परिस्थिति ऐसी नहीं थी कि ऑपरेशन बहुत अनिवार्य रहा हो.

"फिर किन अनिवार्य परिस्थितियों में रेणुजी का आपरेशन किया गया?" मेरे द्वारा यह पूछने पर जयशंकरजी एक आक्रामक मुद्रा अख्तियार कर लेते हैं. ऐसा लगता है मानो रेणु अभी-अभी मरे हों. फिर वे कहते हैं, "मैंने तो पहले ही कहा है आपसे कि रेणु की मौत नहीं, हत्या हुई थी. वे स्वाभाविक मौत के शिकार नहीं हुए थे." फिर वे मेरे द्वारा पूछे प्रश्न पर आ जाते हैं—यही प्रश्न बार-बार मुझे परेशान करता है कि किन हालातों में डॉक्टरों को बाध्य होकर ऑपरेशन करना पड़ा? जिस बीमारी का ऑपरेशन किया जा रहा था उसमें पुनः होश में न आने का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता. उन्नीस दिनों की पूर्ण बेहोशी! लेकिन बाद में पता चला कि 'ऑपरेशन टेबुल' पर उन्हें 'एनेसथिसिया' किसी हाउस-सर्जन छात्र के द्वारा दिलाया गया, किसी एनेस्थेटिस्ट के हाथों नहीं. जब सर्जन ऑपरेशन थियेटर पहुंचे तो देखा कि एनेसथिसिया अधिक मात्रा में पड़ जाने के कारण हृदय-स्पंदन रुक गया है. हृदय-स्पंदन रुक जाने के कारण ब्रेन का रक्त-संचालन बंद हो गया. करीब पांच मिनट तक सर्जन ने 'मसाज' किया तो हृदय की गति आयी किंतु ब्रेन का निक्रोसिस हो गया था. फिर चेतना लौटने का प्रश्न कहां? उनके पेट में कैंसर करार देकर मानो सब मुक्त हो गये.

....और मारे गये गुलफ़ाम!

यह उन्नीस दिनों की बेहोशी तथा उन्नीस महीनों की इमर्जेंसी काफी अर्थपूर्ण है. उनके बेहोश होने की खबर तेजी से फैल गयी. दिल्ली से डॉ. आत्मप्रकाश उन्हें देखने आये थे. जब तक वे होश में नहीं आ जाते, चिकित्सा संभव न थी. लेकिन अब होश में आने का वक्त दूर कहीं खड़ा था. . . . .

पटना के युवकों और बुद्धिजीवियों ने रेणु की इस अकाल मौत के लिए न्यायिक जांच की मांग की थी. उस समय के हाउस-सर्जन छात्रों को बुलाकर उनका 'स्टेटमेंट' लिया जाये तो स्थिति स्पष्ट हो जायेगी. लेकिन रेणु साहित्यकार थे. हमारे देश में साहित्यकार की मौत एक लावारिस और यतीम मौत बनकर ही रह जाती है. . .

और 11 अप्रैल' 77 को पटना के राजेंद्र सर्जिकल वार्ड में रेणु का देहांत हो गया. हजारों की संख्या में छात्र, नेता बुद्धिजीवी, मित्र, हितैषी—सब के सब एकटक देखते रहे.... मारा गया गुलफ़ाम . . . . एक गुलफ़ाम जो तथाकथित इस 'दूसरी आजादी' के लिए अपना सब कुछ अर्पित कर गया. . . . एक गुलफ़ाम जो हिंदी कथा-साहित्य में आज भी जिंदा है. वह शास्वत है. अक्षय है. उसे शत-शत नमन्! □

अंतिम दर्शन :
'हम तो जाते अपने गांव
सब को राम राम राम'
उड़ गया सोने की कलम वाला
'हिरामन' खाली पिंजरा शेष है
और उस के पास हैं—लतिकाजी
तथा अन्य प्रियजन

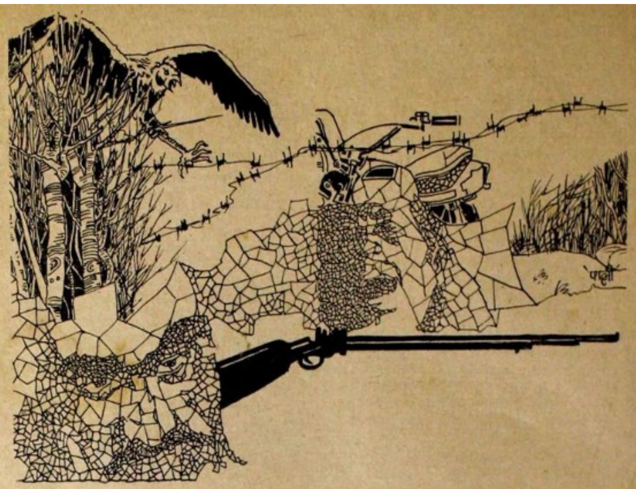

अब तक आप पढ़ चुके हैं...

डाकू मलखानसिंह की बेटी की सगाई बिरज के बेटे से तय हो चुकी थी. शादी होने वाली थी पर बिरादरी के डर से बिरज ने यह रिश्ता तोड़ दिया. इस पर अपमान की ज्वाला में धधकता मलखान बिरज की हत्या करने जा पहुंचा किंतु बालसखा बिरज की बेटी की दुहाई ने उसका अंतस झकझोड़ डाला और वह विवश-सा बैरंग लौट आया. परंतु मन में रह गयी इस कसक ने उसे चैन से नहीं बैठने दिया. यहां तक कि वह अपने विश्वस्त सहयोगी बिंदा पर भी शक करने लगा और कुमुक तथा रसद मुहैया करने वाले व्यापारी कासीराम के कहने पर किये जाने वाले कामों से भी उसे नफरत होती गयी. अपने प्रति धिक्कार और कुकृत्यों के प्रति अनिच्छा में मार-काट करते चले जाने के बावजूद एक दिन पुलिस भिड़ंत में उसने बिंदा को खुद ही गोली मार दी. उसने अच्छा किया या बुरा....सोचते हुए उसे एक सिपाही रामलहरी की याद आयी और उसके मन में सवाल उठा—क्या सिर्फ गोली किसी को मार सकती है?....और वह बिंदाके परिवार की खोज-खबर लेने उसके घर जा पहुंचा, जहां बिंदा की मां थी और थी नयी-नकोर घरवाली! ....वहीं उसे पता लगा कि पास के गांव का जहार सिंह पुनिया को आतंक के बल पर अपने घर बिठा लेना चाहता है. उसे लगा आत्मधिक्कार से मुक्ति पाने का एक यही अवसर है वह पुनिया को जहारसिंह से बचा ले! शुरू में उसने जहारसिंह पर अपना नाम जाहिर नहीं किया और उसके सब अपमान पीता रहा. अब आगे पढ़िये—

...ताकि सनद रहे...

• रामकुमार भ्रमर

जहारसिंह थोड़ी देर के लिए चुप होकर चाय पीता रहा, फिर जूठा गिलास एक ओर सरकाकर उसने सवाल किया, "हां, तो अम्मा तूने क्या सोचा है?"

बुढ़िया ने भयभीत होकर कभी उसे और कभी मुझे देखा. मैं समझ चुका था कि वह अपने सवाल का जवाब मांग रहा है. इस बार जहारसिंह की आवाज कुछ कठोर थी. उससे भी कहीं ज्यादा धमकी भरी.

पुनिया की हौली-सी रुलायी मैंने सुनी. . . बस, अब मुझे अपने आपको जाहिर करना है. . . अब नहीं सह पाऊंगा! मैं धीमे से एक ओर सरक गया हूं. गुदड़ी के नीचे छिपी हुई है राईफल. टेलिस्कोपिक, महंगी राईफल. जैसे ही ये राईफल बाहर निकालूंगा. जहारसिंह की सारी बुलंदी दलदल में समा जायेगी.

जहारसिंह ने मेरी उपस्थिति-अनुपस्थिति की परवाह ही नहीं की. अपनी बात कहे गया, "देख अम्मा. . . !" उसने अपनी ओर से शांत किंतु बेहद कठोर मुद्रा में बिंदा की मां को चेतावनी दी, "मैं भला आदमी हूं. चार बड़े-छोटे जानते हैं. समाज-बिरादरी में भी इज्जत है. पुनिया के साथ कोई बेधरमी नहीं होगी. तू भी मजे करेगी, तेरी बहू भी. इसी गांव में ठाठ से रहती रह. कोई आंख उठाके देखने वाला नहीं होगा, नहीं तो तू जानती ही है कि बखत खराब है. औरतजात का अकेले निबाह कठिन." सहसा वह मेरी ओर मुड़ा, "क्यों भई हरदेवा?"

मैं कुछ बोला नहीं. चुप रह गया. यही प्रकट करना होगा मुझे. जहारसिंह और इस घर में क्या खिचड़ी पक रही है— इससे अपने आपको गैरजानकार जतलाये रखना ही ठीक है. जहारसिंह पुनः बुढ़िया की ओर देखने लगा था और बुढ़िया गरदन झुकाये हुए धरती में ताक रही थी. अकारण! . . .

मैंने हौले से गुदड़ी के नीचे हथेली धंसा दी. राईफल की कमर को अंगुलियों में जकड़ लिया और निश्चित होकर बैठ गया. मुझे लगा कि राईफल के बिना जहारसिंह के सामने मैं सचमुच 'हरदेवा' बनकर रह गया था. . एकदम असली हरदेवा! पर अब, जब अंगुलियां राईफल पर जकड़ गयी हैं तो अचानक मैं मलखानसिंह हो गया हूं. . . एक आंधी जिसमें जहारसिंहनुमा हजारों आदमी उड़कर तिनके भी नहीं रह जाते!

जहारसिंह ने नयी सिगरेट सुलगा ली, "चार बखर की खेती है. देवी की किरपा से, अस्सी बीघा धरती जुत रही है. . . पुनिया तो आराम से चौधरान बनी बैठी रहे. कोई कहने वाला नहीं, कोई सुनने वाला नहीं. और नहीं तो तू जानती ही है कि मेरा नाम जहारसिंह है. इस इलाके में तो किसी की कोख ने ऐसा जना नहीं जो ठाकुर जहारसिंह की मूंछ के गिर्द आये! . . .

"पर पुनिया की मरजी. . ." अनजाने, अचानक मैं कैसे बोल गया, मुझे ही मालूम नहीं हुआ. जहार ने चौंककर मुझे देखा. उसकी आंखों में आश्चर्य था. . . इसलिए नहीं कि मैं बीच में बोला, बल्कि इसलिए कि उसे लगा सहसा किसी मच्छर ने उसके हाथी-बदन पर डंक मार दिया है. फिर वह एकदम हंसा. वही हो-हो-हो के तरीके से. बोला, "लुगाइयों की मरजी से चलने वाले कोई और होंगे. . . जे करतब तुम सहरी लोग ही करते रहो!" वह दोबारा बुढ़िया की ओर मुड़ गया, "हां तो अम्मा. . .?"

शब्द पूरे कर पाये, इसके पहले ही पुनिया की रुलायी तेज हो गयी.

जहारसिंह ने उस रुलायी को सुना-अनसुना कर दिया, "फैसला आज ही होना चाहिए! . . . मैं तुझे पहले ही बता गया था."

बुढ़िया के चेहरे पर उदासी बरस आयी. सहसा मैंने राईफल गुदड़ी से बाहर खींच ली और खड़ा हो गया— इस तरह फुर्ती से जैसे किसी छिपकली ने मोड़ लिया हो. जहारसिंह और बुढ़िया हक्के-बक्के देखते ही रह गये. मेरा चेहरा पथरीला हो आया था.

"तू. . ." जहारसिंह उसी तरह बैठा रहा, फिर जैसे कुछ सोचकर बोला, "तू चपड़ासी है कि. . ."

"वही बताता हूं, ठाकुर जहार-अ्आर-सिंह! . . ." मैंने गरज के साथ कहा, "तू जिस बात का फैसला लेने

आया है, वह मुझसे ले!..."

"पर तू है कौन?" जहारसिंह का चेहरा बुझने लगा था. भीतर से आती पुनिया की रुलायी अब दब गयी थी. शायद वह निश्चित हो चुकी थी कि प्रेत-बाधा दूर हुई.

"मैं बिदा का दोस्त ही हूं, पर हरदेवा नहीं.. .मलखानसिंह!..." मैंने उसकी ओर राईफल की नली घुमायी...पुनिया टापरे से इस कमरे में आ पहुंची. बुढ़िया स्तब्ध बैठी थी, बोल गायब. लगता था जहारसिंह सिकुड़ता जा रहा है... सिकुड़ता ही जा रहा है...

■

लग रहा था कि कुछ पलों के लिए सब कुछ स्थिर होकर रह गया है. बिदा की मां, पुनिया, जहारसिंह, मैं और मेरी राईफल!

खामोशी!

अचानक खामोशी टूटी. जहारसिंह का चेहरा पसीने से तरबतर था. आंखें फैली हुईं. रौनक गुम, जैसे प्लास्टर उघड़ा हुआ कोई खंडहर हो.

थूक के लगातार घूंट निगलने के बाद उसने कहा था, "तुम मलखान ठाकुर हो? .." मेरे उत्तर से पहले ही एकदम उसने हाथ जोड़ लिये थे, "मुझसे गलती हो गयी, ठाकुर! पुनिया मेरी बहन समान है. मुझे माफी दे दो! अब कभी नहीं आऊंगा, इस चौखट...! देवी की सौगंध.... कभी नहीं!"

बुढ़िया और पुनिया चुप थीं. पुनिया की आंखों में एक सीमा तक पुलक थी, किंतु मैंने उड़ती नजर से देख लिया था कि बुढ़िया जहारसिंह से जितनी आतंकित थी, उससे कई गुना आतंकित मेरी उपस्थिति के कारण हो गयी है.

क्या इसका कारण मेरी नाटकीय मौजूदगी है?

शायद हां.

शायद नहीं... इसका कारण है कि मैं एक अनियंत्रित हथियार हूं...आदमी नहीं! और मुझे नेस्तोनाबूद कर डालने के लिए हथियारों की एक भीड़ सारे चंबल इलाके में घूम रही है. वह भीड़ मेरे और अपने बीच आने वाले हर जड़-चेतन को रौंद डालती है. इस समय कहीं बुढ़िया ने महसूस कर लिया था कि वह बीच में आ गयी है... रुंद जाने के लिए! और कौन है, जो इस तरह हथियारों में बिचौलिया बनकर रुंद जाना पसंद करेगा?

राईफल के मुंह से मैंने जहारसिंह की ठोढ़ी कुरेद दी थी. वह कांपकर पीछे हट गया था, "नहीं, ठाकुर! ...नहीं! .."

"उट्ठ! ..." मैं बोला था. वह उठने लगा, पर तभी मैंने रोक दिया था उसे, "तू अकेला नहीं जायेगा."

उसने भयभीत मेरी ओर देखा था.

मैंने कहा था, "हां, तू अकेला नहीं जायेगा. मुझे भी साथ ले चलेगा...!"

"प्पर? ...पर कहां ठाकुर?" वह उसी तरह कांपता हुआ बोला था.

"जहां मैं जाना चाहता हूं." मैंने कहा था फिर हौले से झुककर मैंने कोने में रखे कनस्तर के भीतर से कारतूसपट्टा खींच निकाला था. जहारसिंह को आदेश दिया था, "चल!" जहारसिंह चलने के लिए आगे बढ़ा. मैंने बुढ़िया से कहा था, "अपनी मरजी पुनिया पर मत लादना, अम्मा. धरम आदमी के भीतर से आता है... वह जैसे रहना चाहती है, रहने देना. रही बात, रच्छा की, सो जिनका कोई नहीं होता, उनका भगवान होता है!"

मैंने उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की थी. राईफल से जहार को ठेलता हुआ मैं बाहर निकल गया था. उसने मोटर साइकिल संभाली थी. सुबह का वक्त, इक्का-दुक्का लोग ही दीख रहे थे. सो भी काफी दूर-दूर. मैं जानता था कि जहारसिंह के साथ राईफल लिये घूमते आदमी पर किसी को संदेह नहीं होगा. मैं आराम से राईफल संभाले हुए पीछे बैठ गया था और जहारसिंह ने मोटर साइकिल स्टार्ट कर दी थी. हिलकती आवाज में पूछ लिया था, "किस तरफ चलना है ठाकुर?"

"यहां से गोपालपुर... जंगल-जंगल निकाल ले!" मैंने हुक्म दिया था. बुढ़िया और पुनिया दरवाजे के भीतर से हमें देख रही थीं.

जहारसिंह ने मोटर साइकिल आगे बढ़ा दी थी.

■

मैं सारे रास्ते उसे हिदायतें देता आया था—"कोई पुकारे तो तू रुकेगा नहीं!"

"हां!"

"अब बिदा के घर की तरफ भी नहीं देखेगा!"

"हां."

"गोपालपुर तक स्पीड कम नहीं करनी है."

"अच्छा."

मोटर साइकिल ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्तों पर चीखती, शोर मचाती चली जा रही थी. मैं जानता था कि जहारसिंह अपना सारा आत्मबल खो चुका है. बीच में उसने स्पीड हल्की की थी. प्रार्थना के स्वर में कहा था, "हुक्म दो तो मैं एक सिगरेट पी लूं?"

"नहीं!"

वह चुपचाप बढ़ता गया. हम लोग घने और खतरनाक जंगल को पार किये जा रहे थे और मैं खुश था कि पुलिस की खोज के इलाके से बहुत दूर निकल आया हूं. अब मुझे गोपालपुर से चोरपुरा पहुंचकर आगरा-बंबई रोड पार करते हुए नरवर के जंगल में उतर जाना था. सामान्यत: जब-जब एनकाउंटर होता था, और गिरोह बिखर जाता था, हम लोग नरवर जंगल में एक निश्चित स्थान पर ही मिला करते थे.

"मलखान ठाकुर!" वह ऊबकर फिर से बोल पड़ा था.

"हां."

"पैट्रोल कम पड़ जायेगा."

"बदमाशी देता है हरामी!" मैंने डपट दिया था उसे. अक्सर घबराहट में आदमी हम लोगों से पीछा छुड़ाने के लिए

बहाने खोजने लगता है.

"झूठ नहीं कह रहा हूं." वह गिड़गिड़ाने लगा, "बहुत हुआ तो सौ किलोमीटर जा पायेंगे."

"काफी है." मैंने दबंग आवाज में दबा दिया था उसे, "गोपालपुर से चोरपुरा पहुंचेंगे... वहीं कहीं पैट्रोल जुट जायेगा. आगरा-बंबई रोड है."

"पर उधर कहीं भी पैट्रोल पंप नहीं है."

"मुझे मालूम है.... और यह भी मालूम है कि सतनवाड़ा पर कोई आदमी है, जो महंगे दामों में पैट्रोल बेचता है."

"अच्छा!" उसने लगभग मृत आवाज में जवाब दिया. चुप हो रहा. शायद उसकी घबराहट बढ़ती जा रही थी. सच भी है, वह अपनी ही पीठ पर अपनी मौत को लादे हुए यात्रा कर रहा था.

भरी दोपहरी में हमने गोपालपुर, फिर चोरपुरा और फिर सतनवाड़ा यात्रा की थी. आगरा-बंबई रोड पर दसियों ट्रक, बसें, कारें और पुलिस की गाड़ियां रास्ते में मिलीं. ऐसे हर मौके पर मैं हौले से नली जहार की पीठ पर टिका देता और फुसफुसाकर धमकी देता, "याद रख, अगर जोर की सांस भी निकली तो तू अपनी सारी सांसें खो बैठेगा!"

"नहीं-नहीं, बेफिक्र रहो... मैं दगा नहीं करूंगा!"

"दगा नहीं करेगा तो जी जायेगा!" मैंने उसे आश्वस्त किया. ये दोनों तरीके ही ठीक थे. जहारसिंह को निरंतर दबाये रखना जरूरी था और उसे यह अहसास भी दिलाये रखना जरूरी था कि वह मौत के मुंह में नहीं है.

सतनवाड़ा पर सुविधा से पैट्रोल मिल गया था और इसके बाद काली सिंध की धमकन घाटी उतरकर हम नरवर के भयावह जंगलों में आ पहुंचे थे. वह कुछ ज्यादा घबराने लगा था, "अब ठाकुर?"

"बस, थोड़ी दूर और! .."

हम चलते गये. वेगवती काली सिंध के चौड़े पाट के किनारे-किनारे ऊबड़-खाबड़ जंगली रास्तों को पार करते हुए पहाड़ियों की ओट में आ पहुंचे थे हम. मैंने जहारसिंह को मोटर साइकिल रोक कर एक कोने में टिका देने के लिए कहा था, फिर मोटर साइकिल से उतरकर आदेश दिया था कि वह मेरे आगे-आगे चलता चले... उस दिशा में, जिधर मैं उसे ले जाऊं.

"तुम्हारा हुक्म निबाह दिया ठाकुर... अब मुझे जाने दो." वह कातर हो उठा था.

"नहीं!" मैं गरजा था, "तू तब जायेगा, जब मैं यहां से कहीं निकल पडूंगा."

"धरम से कहता हूं, किसी से कुछ नहीं कहूंगा." वह समझ गया था कि मैं उसे क्यों रोके रखना चाहता हूं.

"नहीं!"

"पर...?"

"मुझे ज्यादा ऊंची आवाज अच्छी नहीं लगती."

वह भयभीत होकर मुझे देखता रह गया था. लग रहा था कि उसका सारा लहू निचुड़ चुका है.

"आगे बढ़!..." मैंने राईफल से फिर धकेल दिया था उसे. वह निराश होकर चुपचाप चलने लगा था... देर तक के लिए वह सिर्फ अपने आप में ही उलझा रह गया था. अब न पूछने के लिए कुछ शेष था, न उत्तर के लिए.

और मैं टूटे हुए चार दिनों से जुड़ गया था... एनकाउंटर, बिदा की हत्या, यहां-वहां मिली खबरें...

बिदा के अलावा और दो कौन थे? ... अब तक निश्चित जगह पर बचे हुए लोग आ चुके होंगे! ... क्या मालूम, किस-किस को देखने वाला हूं?... एक तड़प के साथ मैंने सोचा था.

इस इलाके में पथरीली चट्टानें और छोटे-छोटे नाले, ढाल, चढ़ाइयां बहुत हैं. सांप भी बहुत होते हैं. बीच-बीच में मुझे चौकन्नी निगाहों से अपने इर्द-गिर्द भी देख लेना पड़ता है. मगर जहारसिंह ज्यादा भयभीत होगा. यह सब हम लोगों के लिए जितना सहज-सामान्य हो चुका है, उसके लिए एक अग्नि-परीक्षा है! अनायास ही मुझे हंसी आ गयी—स्साला!...न पुनिया के बारे में सोचता, न इस मौत के कुएं में गिरता. भीतर-ही-भीतर माथा धुनता जा रहा होगा.

■

वे दो थे—हीरामन और सिरिया! पहली नजर में ही उन सबको देखकर समझ गया था मैं. तीन मेरे सामने खड़े हुए थे. थके, पराजित और कमजोर! एक के टखने में पट्टी बंधी हुई थी.

झाड़ियों की खड़खड़ाहट के कारण वे चौकन्ने हो गये थे. जब मैं बिल्कुल चट्टान के पास जा पहुंचा, तब वे यहां-वहां से निकलकर सामने आये! जहारसिंह के चेहरे का रंग ज्यादा गायब हो गया. मुझे लग रहा था जैसे इतने समय में ही जहारसिंह ने चार-छह माह की लगातार बीमारी झेल ली है. जल्दी ही मैंने उसके बारे में सोचना छोड़ दिया. मैं अपने साथियों के बारे में सोचने लगा था. सिरिया और हीरामन की अनुपस्थिति ने जतला दिया था कि बिदा के अलावा मारे गये यही दो हैं... इसके बावजूद मैंने पूछना अच्छा समझा.

"हीरा और सिरिया तो पहली मार में ही बोल गये थे ठाकुर!" गोवर्धन ने उत्तर दिया. मुझे अचरज हुआ कि यह उत्तर ऐसे ही था, जैसे उसने कोई मजाक किया हो.... मुझे इसलिए और ज्यादा अचरज था कि गोवर्धन हीरामन का 'खास' था, उससे भी कहीं ज्यादा बिदा का 'अपना', पर इस पल वह एकदम बदला हुआ था. ऐसा क्यों हुआ है?

क्यों हुआ है—यह अगली ही बात से सामने आ गया. गोवर्धन ने कहा था, "बिदा उजड्ड था! ... कित्ती बार उसे मैंने समझाया था कि मुकाबले में समझ से काम लेते हैं, जट्टपने से नहीं. पर कभी नहीं माना. और तो और ठाकुर, मैंने हीरा और बिदा दोनों से कहा था कि मलखान ठाकुर के आगे ज्यादा चपड़-चपड़ मत किया करो. मलखान हमारा मुखिया है तो उजड्डपने की वजह से थोड़ी है, अक्कल की वजह से है..." फिर गोवर्धन ने कुछ खास तरह से मुझे देखा था, जैसे कहा हो—'मुझे मालूम है ठाकुर, तुमने बड़ी अक्कल से काम लिया!'

अक्कल यानी बिंदा का खात्मा! इस खात्मे ने शायद गोवर्धन को पस्त कर दिया है और अब किसी तरह गिरोह में समझौता किये रहना चाहता है.

"जो भी हो, इस बार पुल्हस ने मार तगड़ी दी!" गोवर्धन बैठ गया था. अब उसकी नजरें जहारसिंह पर जा ठहरी थीं. फिर वे प्रश्न बनकर मेरी ओर मुड़ीं. मैंने हंसकर सबको बताया था, "ये ठाकुर जहारसिंह हैं. चार बखर की खेती है इनके यहां. अस्सी बीघा धरती!"

मेरी हंसी और निगाहों ने शायद सभी को समझा दिया कि जहारसिंह किसलिए यहां है . . . वे एक साथ हंस पड़े थे. गोवर्धन ने पूछा था, "तो चिट्ठी भिजवानी पड़ेगी?"

जहारसिंह भौंचक्का, भयभीत होकर कभी उन्हें देखता, कभी मुझे.

"हां, लिख-पढ़ लेते होंगे?" मैं बोला, "क्यों जहार ठाकुर?"

"हां . . . . आठ दरजे पढ़ा हूं."

"बस्स! . . . तो बन गयी बात." गोवर्धन ने कहा.

जहारसिंह कुछ समझा, कुछ नहीं. असमंजस उसके माथे पर अंकित. मैंने कहा था, "बैठो, जहार ठाकुर!" फिर गोवर्धन की ओर मुड़ा, "कोई कागज है रे?"

"हां!" गोवर्धन ने जेब से एक मुड़ा-तुड़ा कागज निकालकर मुझे दिया. मैंने जहार को, "अब ऐसा करो ठाकुर, अपनी औरत या भईया के नाम एक चिट्ठी लिख दो कि हम मलखान की मेहमानी कर रहे हैं. मजे में हैं, पर आठ दिन बाद मर लेंगे, अगर पचास हजार रुपया न भिजवाये. जगह-ठिकाना, सब वह आदमी तय कर देगा, जो यह चिट्ठी लेकर आ रहा है!"

"नहीं-नहीं, ठाकुर! मैं बहुत गरीब आदमी हूं . . . बाल-बच्चे वाला. मर जाऊंगा!" वह रुआंसा हो गया.

"पूरी बात सुन लो!" मैंने कहा, "चिट्ठी में यह भी लिख भेजना कि अगर पुलिस के फेर में पड़े तो आठ दिन पहले ही मर लेंगे हम! इस कारण इस चिट्ठी को तार समझें और काम फटाफट करके तुम्हें छुड़ा ले जायें!"

"नहीं, ठाकुर! . . . जवान बेटी ब्याहने को है." जहार ने पैर पकड़ लिये मेरे. वह रोने लगा था, "उस कन्या के नाम पर ही मुझे छोड़ दो! . . . मेरा बूता इत्ता नहीं है ठाकुर!"

"तब कित्ता है? . . . उत्ते की बात किये लेते हैं." मैं क्रूरता से मुस्कराया.

"मेरा बूता तो कुछ भी नहीं है ठाकुर! बाप को लकवा लगा हुआ है. घर में दस लोग खाने वाले हैं . . . जवान कन्या सिर पर . . . जैसे-तैसे चला रहा हूं . . . बिल्कुल बरबाद हो जाऊंगा . . . . मुझे माफ कर दो!"

"यह तो बात बनी नहीं, जहार ठाकुर!" मुझे इस सबमें बहुत आनंद आता है. जैसे-जैसे जहार की गिड़गिड़ाहट बढ़ती जा रही है, वैसे-वैसे मुझे ज्यादा ही आनंद आने लगा है, "अस्सी बीघा धरती और चार बखर की खेती . . . सिरफ पचास ही तो मांगे हैं, जहार सिंह!"

"पर . . . ठाकुर . . ." वह रोने लगा था.

मैं एकदम उठ खड़ा हुआ. एक ठोकर जहार के जबड़े पर मार दी, "चिट्ठी लिख स्साले! बहुत हुई रांड-रुलायी! . . . टैम नहीं है हमारे पास." फिर मैं गोवर्धन की ओर मुड़ा, "तू नरवर से आदमी का भी बंदोबस्त कर और खाने-पीने का भी."

गोवर्धन उठ खड़ा हुआ.

जहार जबड़ा सहला रहा था और उसकी रुलायी बंद हो चुकी थी, किंतु आंसू बराबर आंखों में छलक रहे थे. मैंने उसकी ओर अनदेखा किया और चट्टान पर लेट रहा. अनायास ही मुझे बिंदा, हीरामन और सिरिया याद हो आये थे. आदमी कैसे गायब हो जाता है एकदम? ऐसे जैसे जेठ की धूप में डामर रोड पर एक चुल्लू पानी बिखर जाये . . . दो पल बाद पहचान न आये कि यहां पानी बिखरा था.

मैंने आंखें मूंद लीं. धूप तेज थी, पर विशालाकार सघन पेड़ों की छाया ने माहौल ठंडा कर रखा था. गोवर्धन झाड़ियों में उतरा जा रहा था. बीच में हल्की-सी आशंका उठी थी दिमाग़ में—अगर गोवर्धन बेईमानी—दगा कर बैठे तो! जिस पल उसने बिंदा को लेकर बात की थी, आंखें कुछ खास तरह मेरी ओर लगा रखी थीं . . . इस विचार के साथ ही मैंने राईफल मुट्ठी में कस ली. यही है जो मुझमें, या हम जैसे लोगों में सांसें धड़काये रहती है . . . जब-जब इस तरह की अविश्वासी

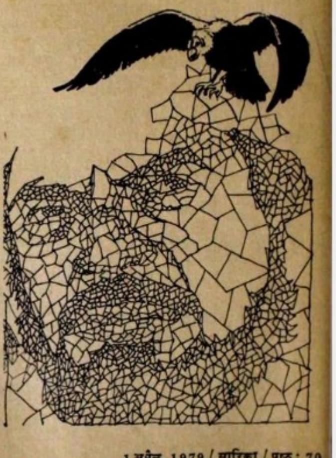

आंधियां दम फुलाने लगती हैं, तब-तब इसे थामकर हम लोग निश्चित हो रहते हैं. या यों कि फूलते दम को दिलासा दे लेते हैं.

अनायास मेरी आंखें खुल गयीं. जहारसिंह एक ओर उदास बैठा था. कागज एक पत्थर से उसके सामने दबा हुआ था. मैंने गुर्राकर कहा, "क्यों, लिखा नहीं तूने?"

"लिखे देता हूं ठाकुर." वह कुछ कुढ़कर बोला और उसने कागज उठा लिया.

▣

सब कुछ बड़ी सहजता से निबट गया. जहारसिंह की चिट्ठी ने चार दिन में ही पचास हजार ला दिये और जहार को वायदे के अनुसार उसके आदमी के हाथों सौंपकर हम लोगों ने वह ठिकाना छोड़ दिया. मैं खुश था कि मैंने पुनिया के साथ हुई ज्यादती का न सिर्फ बदला ले लिया है, बल्कि जहारसिंह किस्म के लोगों को एक ऐसा सबक दे दिया है, जो उन्हें हमेशा किसी ग़लत काम से रोकता रहेगा! यह सोचने की तकलीफ मैंने नहीं उठायी थी कि उस सबमें मैं कितना सही था और कितना ग़लत?

बिंदा की जगह गोवर्धन ने कब ले ली थी, यह मुझे मालूम ही नहीं हुआ था. बस, कुछ दिनों में मुझे लगने लगा था कि मुझे बिंदा की जगह आदमी चाहिए और गोवर्धन कब, कैसे उस जगह को ले बैठा, मैं जान नहीं सका था. जाना था उस दिन, जब अचानक गोवर्धन ने भी उसी वज़नी तरीके से, जिस तरह बिंदा बात करता था, मुझसे बात की थी. बात उठी थी, मेरे घर जाने के निर्णय को लेकर. खबर आयी थी कि बरखा अपने मैके आयी हुई है. मैंने तुरंत अपनी तड़प को शांत करने वाला निर्णय ले लिया था कि मैं बरखा से मिलने उसके घर ही पहुंचूंगा.

गोवर्धन ने कहा था, "मैं ठीक नहीं समझता!" शाम का वक्त था और वह उस बागीचे में, जिसमें हम थोड़ी देर पहले ही आ टिके थे, आराम से बैठा अमरूद खा रहा था.

मैंने कुछ चौंककर देखा था उसे . . . लगा था कि वह गोवर्धन नहीं है—बिंदा है. वही रुख, वही तरीका, वही बुलंदी, यानी एक और बिंदा पैदा हो गया है! कब तक ये बिंदा पैदा होते रहेंगे? मैंने कुढ़कर सोचा था और कब तक मैं इस नये बिंदा को सह पाऊंगा? किसी दिन इसे भी ठीक उसी तरह . . .

पर उसके बाद कोई तीसरा बिंदा पैदा होगा. असल में हर मुखिया, एक बिंदा का मोहताज होता है.

'बिंदा' कह रहा था, "ठाकुर, पुलिस के कुत्तों का कोई भरोसा नहीं. क्या मालूम भौजी के पीछे-पीछे टोह लेते चले आये हों?" उसके स्वर में संदेह भी था, सुझाव भी, चिंता भी. और तुरंत ही मैं दूसरी करवट सोचने लगा था— वह बिंदा नहीं है, गोवर्धन है. उसने आदेश के रुख में कुछ नहीं कहा, सिर्फ अपना धरम निभाया है. और गिरोह में मेरे पास कम से कम ऐसा आदमी होना ही चाहिए. शेष लोगों ने भी समर्थन किया था, "हां, गोवर्धन पंडित ठीक ही कह रहे हैं ठाकुर . . !"

एक पल मैंने सोचा, पर बरखा . . . ? जो कभी-कभी एकदम अंकुर की तरह मेरे मन में फूट निकलती है, उसे दबोच डालने का साहस मुझमें नहीं है. बल्कि इस अंकुर को सींचने के लिए मैं दुस्साहस कर डालना चाहता हूं.

इस बीच 'बिंदा' का नया सुझाव आ पहुंचा, "तुम्हारे भीतर की बात जानता हूं, ठाकुर! पर भौजी के पहुंचने के बाद एक-दो दिन सबर करके मिलने जाओ तो ठीक रहे!"

मैं कुछ नहीं कहता. और मेरे कुछ न कहने का मतलब गोवर्धन जानता है. यह कि मैं अपने निर्णय के अतिरिक्त कुछ सोचने-समझने को तैयार नहीं हूं.

यहां से वह गांव, जहां मुझे पहुंचना है, सिर्फ आठ किलोमीटर दूर है. पहुंचने में डेढ़ घंटे से ज्यादा नहीं लगेगा, पर वह डेढ़ घंटा मेरे लिए दस घंटे के बराबर है. रात से पहले मैं निकल नहीं सकता और इस समय सुबह हुई ही है.

जैसे-तैसे दिन काट पाया हूं. बरखा को लेकर यादें उमड़ती-घुमड़ती रही हैं. कितने लंबे अरसे बाद मिलूंगा उससे? कैसा लगेगा? . . . मैं रह-रह कर रोमांचित होता रहा हूं. बरखा और बरखा की यादें . . . .

शाम के साथ ही मैंने गोवर्धन से कह दिया था, "तैयार हो जाओ, चलेंगे!"

वह कुछ नहीं बोला. मैंने देखा कि वह कुछ गंभीर हो उठा था. मैं आशंका के हल्के-से दौर से गुजरा—क्या वह मेरी अवहेलना करने वाला है? . . . .

पर तुरंत ही लगा था . . . नहीं, इतना साहस नहीं कर पायेगा वह?

यदि करेगा तो मैं करने नहीं दूंगा.

मैं सब कुछ सह सकता हूं, अवहेलना नहीं! . . . यह यहां का रिवाज भी है, मिजाज भी. मेरी जगह कोई भी हो, वह इसी तरह सोचेगा. सोचना भी चाहिए.

मैं पुनः बरखा के बारे में सोचने लगा था, पर तुरंत ही मेरा ध्यान गोवर्धन और अन्य साथियों की ओर गया. वे

लघुकथा

अपना-अपना सुख

वह एक लड़की को अपने प्रेम पाश में बांधकर भगा लाया. मैंने उसे बुरा भला कहा तो वह बोला, इसकी जिंदगी बनाने के लिए लाया हूं!" मैं चुप हो गया.

कुछ दिनों बाद वह मुझे फिर मिला. अकेला! मैंने लड़की के बारे में पूछा तो वह आकाश की ओर देखता हुआ बोला, "मैंने उसे छोड़ दिया!"

"क्यों?" मैं चौंका!

"अपनी जिंदगी भी तो बनानी थी!" वह बोला. मैं विस्मित-सा उसके चेहरे की तरफ देख रहा था!

▣ एस. मोहन 'शरन'

पूर्ववत् उसी तरह बैठे हुए थे, जिस तरह पहले थे. क्यों? ... क्या मेरी आशंका सही है?

"गोवर्धन!" मुझे बोलना पड़ा था.

"हां, ठाकुर!" मुझे लगा था कि वह भी अनचाहे ही बोला है.

"हमें चलना है!" मैंने कहा.

थोड़ी देर गोवर्धन का उत्तर नहीं आया. फिर उसने चुप तोड़ा, "हमने सही बात कही थी ठाकुर, पर तुमने नहीं मानी. अब हमने सोचा है कि हम तुम्हारे साथ खतरे में नहीं पड़ेंगे!"

मेरी आशंका सच थी. एक पल के लिए मैंने झटका सहा, फिर एक गहरी सांस लेकर कहा, "इसका मतलब है कि तुम लोग मेरे साथ नहीं रहना चाहते?"

"यह हमने नहीं कहा" गोवर्धन बोला, "पर जिस तरियां के फैसले तुम कर लेते हो, उसमें हमारा साथ नहीं रहेगा."

"ठीक है" मैंने राईफल संभाली. उठ खड़ा हुआ, "तब मैं जाता हूं. आज से मेरी तुम्हारी राम-राम हुई!"

वे चुप रहे. मैं समझ चुका था कि अब उनसे नहीं पटेगी. अक्सर गिरोह इसी तरह टूटते हैं. जाते-जाते मैंने कह दिया था, "आपस में बिसवास ही नहीं रहा, फिर साथ कैसा?" मैंने चलने के लिए कदम बढ़ाया ही था कि गोवर्धन बोल पड़ा, "यही तो कारण हुआ है ठाकुर! बिसवास तुमने तोड़ा है, हमने नहीं."

"मैंने तोड़ा है?" मुझे गुस्सा आया.

"हां!" गोवर्धन आगे बढ़ आया था, "हमें मालूम है ठाकुर, बिंदा अपनी मौत नहीं मरा, न पुलिस की गोली ने उसे ठिकाने लगाया. तुमने उसे मार दिया! धोखे से मार दिया!"

"झूठ है यह! ..." मैं चीख पड़ा था एकदम. कैसे चीख पड़ा था, मुझे स्वयं ही नहीं मालूम. इसके बावजूद मुझे लगा था कि मैं इस चीख या शोर से उस सच को नहीं दबा पाऊंगा, जिसे गोवर्धन ने मेरे मुंह पर थूक दिया था.

"नहीं, ठाकुर! यही सच है. और यह भी सच है कि उस दिन जब तुमने रैफल उठायी, तब मैं उसी दरार में दुबका हुआ था, जहां से तुमने बिंदा का निसाना लिया था" गोवर्धन आरोप दोहराये गया, "मेरी आंखें इत्ती कमजोर नहीं हैं! आज तक जैसे डर-डर कर तुम्हारे साथ रहा हूं, सो मेरा मन ही जानता है, पर अब नहीं बनता!"

"तुम लोग भी इसकी बात पर विश्वास करते हो?" मैंने शेष दोनों साथियों से सवाल किया था.

उत्तर में वे चुप हो रहे थे. सिर झुकाये हुए. शायद यही उनका उत्तर था. उन्हें मेरी तुलना में गोवर्धन पर ज्यादा विश्वास था, पल भर में जाहिर हो गया और इसके साथ ही यह भी जाहिर हो गया था कि मैं अपने गिरोह से निष्कासित कर दिया गया हूं. अचानक मुझे उन सबसे भय लगने लगा था. मैंने भय को दबाकर कहा था, "ठीक है... राम-राम!" और इसके पहले कि वे कुछ कह पायें, या सोच पायें मैं तेजी से गहराई में उतरकर एक चट्टान की ओट में समा गया. अब मुझे जल्दी से जल्दी यहां से निकल जाना था. इसलिए नहीं कि मुझे बरखा के पास पहुंचने की जल्दी थी, बल्कि इसलिए कि मैं समझ चुका था—किसी भी पल मेरे ही आदमियों की नजर किसी और तरह मेरे खिलाफ बदल सकती है. चट्टान की ओट में पहुंचते ही मैं तेजी से दौड़ने लगा था...

शायद दौड़ नहीं रहा था मैं, भाग रहा था! ... जीवन-रक्षा के लिए भाग रहा था. मैं, बहादुर, मर्द, मलखानसिंह! ...

इसी तरह पहुंचा था मैं ससुराल के गांव. हांफता, थका-मांदा, पराजित! गांव के करीब पहुंचने से पहले मैंने फिर से बहादुरी और मर्दानगी का बुरका ओढ़ लिया था. उत्तेजित, बेचैन दिमाग को थोड़ा-बहुत संतुलित किया था. थोड़ी देर गांव-बाहर रुककर सुस्ताया था, और फिर निश्चित भाव से चल पड़ा था हवेली की ओर... उन्हें जरा भी मालूम नहीं होना चाहिए कि मैं कायरों की तरह अपने ही आदमियों से बचकर निकल आया हूं.

अंधेरे में डूबा हुआ था गांव. इक्का-दुक्का जगह रोशनी के कुछ धब्बे, उन धब्बों में कच्चे-पक्के घर चमकते हुए या उन घरों से चमकते हुए धब्बे! हवेली के मुख्य द्वार पर पहुंचकर हौले से मैंने थपकियां दी थीं. दरवाजा खुला. सवाल उछला, "कौन है?"

"मैं... मलखान!" बहुत दबे स्वर में मैंने कहा. दरवाजा पूरा खुल गया और फिर उतनी ही फुर्ती से बंद कर लिया गया. मैं भीतर आ चुका था. लालटेन की मद्दी रोशनी बढ़ायी मेरे साले ने. झुककर पांव छू लिये. वह खुश था, वह परेशान भी था. पौर (बंद बरामदे) में कोई नहीं था हमारे सिवा. यों भी ससुराल के नाम पर इस घर में मेरे इकलौते साले, उसकी पत्नी और मेरी सास के अलावा कोई नहीं है. मैं निश्चित होकर एक ओर बैठ रहा. अब मैं सुरक्षित था. इसलिए भी क्योंकि मैं अपने विद्रोही साथियों से बचकर निकल आया था और इसलिए भी कि मुझे यहां आते किसी ने नहीं देखा था. मैं तुरंत पूछ लेना चाहता था—'बरखा आ गयी?' पर उसका अवसर नहीं दिया था मेरे साले महाराजसिंह ने. बोला था, "अभी दो दिन पहले ही बहना जीजी आयी हैं."

"मुझे मालूम है."

"मैं मइयो को खबर दे आता हूं." वह लालटेन वहीं रखकर भीतर जाने लगा था, "तब तक जीजा तुम सबसे कोने वाले कमरे में पहुंचो!" वह तेजी से चला गया. मैंने लालटेन उठायी और कोने वाले कमरे की ओर बढ़ चला. जानता हूं, महाराजसिंह ने यह कमरा किसलिए चुना होगा. वह मुझे ऐसी स्थिति में रखना चाहेगा ताकि किसी को यहां मेरी उपस्थिति का आभास भी न हो.

कोने वाला कमरा अनाज से भरा हुआ था. एक ओर पुरानी चारपाई पड़ी हुई थी. लालटेन एक तरफ रखकर मैंने चारपाई बिछा ली. उसके दो पैर अनाज में धंस गये.

मैं बैठा रहा. एक बीड़ी सुलगायी और सोच में डूब गया. अभी बरखा को खबर मिलेगी कैसी गुदगुदी से भर उठेगी वह! ... पर सहसा मुझे याद हो आया कि मैं अकेला हो गया हूं और मुझे जल्दी ही गिरोह बनाना पड़ेगा.

तभी मेरा ध्यान उचट गया. हल्की पदचाप और उसके साथ पायल की रुनझुन. जरूर बरखा आ रही थी. मैं सब कुछ भूल गया था. दो पल बाद ही बरखा मेरे सामने खड़ी थी... मैं उत्साहित होकर उसे अपनी बाहों में भर लेना चाहता था किंतु मुझे लगा था कि यह बरखा नहीं, सिर्फ उसका आभास है.

हां, वह आभास ही था. वह बरखा जिसे कुछ बरस पहले मैं छोड़ आया था, हर बार अपने पिछले का आभास बनती जा रही थी. और इस समय वह सिर्फ आभास भर थी. उसके गोरे जिस्म पर हल्का सांवलापन उभर आया था जैसे किसी कारखाने की नयी चिमनी अनवरत जलन झेलते-झेलते अपना रंग बदल बैठती है. उसके गालों में गढ़े थे और आंखें सिर्फ दो धुंधलाये हुए पुराने दियों की तरह टिमटिमा रही थीं, जिनका तेल चुक जाता है और ज्योति क्षीण होती जाती है.

उसने शायद मुसकराना चाहा था, पर यह मुसकान ऐसी थी जैसे कालिखभरी बाल्टी में सुनहरी रंग की बूंद का अस्तित्व. होकर भी नहीं के बारबर. मैं सकपका गया था. एक पल खामोश ठहरी निगाहों से हम एक-दूसरे को देखते रहे थे. फिर वह बोली थी, "कैसे हो?"

"तू कैसी है?"

फिर वही कालिख में सुनहरी बूंद. चुप उत्तर!

"तूने अपना क्या हाल बना लिया है बरखा?" मेरा जी हुआ था कि इस बार उसे सीने से भरकर रो दूं... उस पर नहीं, शायद अपने आप पर. पर अपने भीतर के सारे आंसू मैं ही पी चुका हूं...और मुझे ही नहीं मालूम!

"रोटी खाओगे ना?" उसने सवाल किया था.

"हां!"

वह मुड़ गयी थी. मैं उसे रोक लेना चाहता था, किंतु क्या कहकर रोकूं, कैसे रोकूं, तय नहीं कर सका था. वह चली गयी थी और मैं लेट रहा था. मुझे फिर याद हो आया था कि मुझे गिरोह के लिए नहीं, अपने लिए गिरोह की जरूरत है. मैं फिर से भूल गया था बरखा को... (क्रमशः)

अगले अंक में

"...तुम्हें देख लिया, अच्छा हुआ! पर जाने क्यों, कभी नहीं लगता कि तुम, तुम हो. हर बार लगता है जैसे मैं उस आदमी से नहीं मिली हूं, जिससे ब्याहकर आयी थी! सच, सुहागिन होकर भी मन विधवा का रह गया!" बरखा यानी बागी की पत्नी का आत्मक्रंदन..बागी जीवन से साक्षात्कार करता उपन्यास का एक मार्मिक अंश...

ग़ज़लें

करने लगे दरख्त जिरह आसमान से,
इक लम्हा खा गया सदी झूठे बयान से.

मुर्दे सजे क़फ़न में लगे सावधान से,
विस्मित शिकारी शेर कूदते मचान से.

बुत बोलने लगे हुए हम बेजुबान से,
अफवाहें जवां होती हैं अपने मकान से.

गुलशन उदास आती महक बियाबान से,
पर्वत पे चढ़ रही किरण शायद ढलान से.

देती फरेब हर नजर है इत्मिनान से,
अपनों से मिला प्यार है सारे जहान से.

▣ विट्ठल भाई पटेल

*

देखी है खिजां की बेरहमी वीरान गुलिस्तां देखा है,
जलते हुए जंगल देखे हैं सूखा हुआ चश्मा देखा है.

लुट जाते हैं चौराहे पर गफ़लत में कभी चौकन्ने में,
दावा तो यही सब करते हैं हमने भी जमाना देखा है.

देखी भी नहीं मय मुद्दत से तुम कहते हो पी रखी है,
प्यासा कैसे बहकेगा भला पीकर तो बहकना देखा है.

झुलसे हैं कभी, टूटे हैं कभी, बह निकले हैं सैलाब में हम,
जीने की हर टूक ख्वाहिश में बस मौत का सामां देखा है.

राही तो मंजिल पा ही गये सब उनकी खुशियां देखते हैं,
राहों के सीनों का किसने रौंदा हुआ अरमां देखा है.

वैसे तो तजुर्बे की खातिर नाकाफी है यह उम्र मगर,
हमने तो जरा से अर्से में मत पूछिए क्या-क्या देखा है.

▣ सुनील मिश्र

मैं बैठा रहा. एक बीड़ी सुलगायी और सोच में डूब गया. अभी बरखा को खबर मिलेगी कैसी गुदगुदी से भर उठेगी वह!... पर सहसा मुझे याद हो आया कि मैं अकेला हो गया हूं और मुझे जल्दी ही गिरोह बनाना पड़ेगा.

तभी मेरा ध्यान उचट गया. हल्की पदचाप और उसके साथ पायल की रुनझुन. जरूर बरखा आ रही थी. मैं सब कुछ भूल गया था. दो पल बाद ही बरखा मेरे सामने खड़ी थी... मैं उत्साहित होकर उसे अपनी बाहों में भर लेना चाहता था किंतु मुझे लगा था कि यह बरखा नहीं, सिर्फ उसका आभास है.

हां, वह आभास ही था. वह बरखा जिसे कुछ बरस पहले मैं छोड़ आया था, हर बार अपने पिछले का आभास बनती जा रही थी. और इस समय वह सिर्फ आभास भर थी. उसके गोरे जिस्म पर हल्का सांवलापन उभर आया था जैसे किसी कारखाने की नयी चिमनी अनवरत जलन झेलते-झेलते अपना रंग बदल बैठती है. उसके गालों में गढ़े थे और आंखें सिर्फ दो धुंधलाये हुए पुराने दियों की तरह टिमटिमा रही थीं, जिनका तेल चुक जाता है और ज्योति क्षीण होती जाती है.

उसने शायद मुसकराना चाहा था, पर यह मुसकान ऐसी थी जैसे कालिखभरी बाल्टी में सुनहरी रंग की बूंद का अस्तित्व. होकर भी नहीं के बारबर. मैं सकपका गया था. एक पल खामोश ठहरी निगाहों से हम एक-दूसरे को देखते रहे थे. फिर वह बोली थी, "कैसे हो?"

"तू कैसी है?"

फिर वही कालिख में सुनहरी बूंद. चुप उत्तर!

"तूने अपना क्या हाल बना लिया है बरखा?" मेरा जी हुआ था कि इस बार उसे सीने से भरकर रो दूं... उस पर नहीं, शायद अपने आप पर. पर अपने भीतर के सारे आंसू मैं ही पी चुका हूं... और मुझे ही नहीं मालूम!

"रोटी खाओगे ना?" उसने सवाल किया था.

"हां!"

वह मुड़ गयी थी. मैं उसे रोक लेना चाहता था, किंतु क्या कहकर रोकूं, कैसे रोकूं, तय नहीं कर सका था. वह चली गयी थी और मैं लेट रहा था. मुझे फिर याद हो आया था कि मुझे गिरोह के लिए नहीं, अपने लिए गिरोह की जरूरत है. मैं फिर से भूल गया था बरखा को... (क्रमशः)

अगले अंक में

"...तुम्हें देख लिया, अच्छा हुआ! पर जाने क्यों, कभी नहीं लगता कि तुम, तुम हो. हर बार लगता है जैसे मैं उस आदमी से नहीं मिली हूं, जिससे ब्याहकर आयी थी! सच, सुहागिन होकर भी मन विधवा का रह गया!" बरखा यानी बागी की पत्नी का आत्मक्रंदन ..बागी जीवन से साक्षात्कार करता उपन्यास का एक मार्मिक अंश...

ग़ज़लें

करने लगे दरख्त जिरह आसमान से,
इक लम्हा खा गया सदी झूठे बयान से.

मुर्दे सजे क़फ़न में लगे सावधान से,
विस्मित शिकारी शेर कूदते मचान से.

बुत बोलने लगे हुए हम बेजुबान से,
अफवाहें जवां होती हैं अपने मकान से.

गुलशन उदास आती महक बियाबान से,
पर्वत पे चढ़ रही किरण शायद ढलान से.

देती फरेब हर नजर है इत्मिनान से,
अपनों से मिला प्यार है सारे जहान से.

▣ विट्ठल भाई पटेल

*

देखी हैं खिजां की बेरहमी वीरान गुलिस्तां देखा है,
जलते हुए जंगल देखे हैं सूखा हुआ चश्मा देखा है.

लुट जाते हैं चौराहे पर गफ़लत में कभी चौकन्ने में,
दावा तो यही सब करते हैं हमने भी जमाना देखा है.

देखी भी नहीं मय मुद्दत से तुम कहते हो पी रखी है,
प्यासा कैसे बहकेगा भला पीकर तो बहकना देखा है.

झुलसे हैं कभी, टूटे हैं कभी, बह निकले हैं सैलाब में हम,
जीने की हर टूक ख्वाहिश में बस मौत का सामां देखा है.

राही तो मंजिल पा ही गये सब उनकी खुशियां देखते हैं,
राहों के सीनों का किसने रौंदा हुआ अरमां देखा है.

वैसे तो तजुर्बे की खातिर नाकाफी है यह उम्र मगर,
हमने तो जरा से अर्से में मत पूछिए क्या-क्या देखा है.

▣ सुनील मिश्र

अगला अंक

पाक्षिक **सारिका**

अप्रैल अंक : दो

नवलेखन विशेषांक

... हमारा भी जमाना था !
... हमारा ही ज़माना है !

बड़े-बूढ़ों और नयी पीढ़ी के बीच यह कोई मामूली लड़ाई नहीं. इसी संदर्भ में प्रस्तुत हैं—

पढ़ाई-लिखाई, रोजी-रोटी, घर-परिवार, रिश्ते, राजनीति, यौनाचार आदि जन-जीवन की सच्चाइयों और तल्खियों से जूझते नये लेखकों के रचनात्मक अनुभवों से भरपूर बारह कहानीकारों—

तरसेम गजराल, दीपक शर्मा, रघुनाथ प्यासा, क्षमा शर्मा, अशोक गुप्त, ब्रजकिशोर, अनिल कौशिक, राजेंद्र कमल, तपन कुमार बनर्जी, ऊषा किरण, मातादीन खरवार और बाला दुबे की कहानियां.

"आपके लेखन के प्रारंभिक दिनों की तुलना में वर्तमान नवलेखन में कौन-कौन से रचनात्मक अंतर हैं?"

जवाब दे रहे हैं—जैनेंद्र कुमार, मनोहरश्याम जोशी, नरेंद्र कोहली और गंगाप्रसाद विमल आदि.

लेखन और देखन में नवलेखन

रामदरश मिश्र, धर्मेंद्र गुप्त, हिमांशु जोशी, नरेंद्र मोहन, महीप सिंह, शानी, बदीउज्जमा और जितेंद्र सेठी की विवेचनात्मक टिप्पणियां

परिचर्चा : नवोदित लेखकों की समस्याएं

भाग ले रहे हैं—हरीश पाठक, अशोक कुमार खन्ना, उदयप्रकाश, सुनील कौशिश, मधु शर्मा, मृणालिनी आदि

ताकि सनद रहे

रामकुमार भ्रमर के उपन्यास की अगली किस्त

तथा सभी स्थायी स्तंभ